R.N.I. No. 2321/57
ओ३म्
रजि. सं. MTR नं. 04/2016-18
सितम्बर 2017
अंक 8

तपोभूमि

मासिक

आर्यो ! प्रमाद त्यागो

विश्व की निराश दृष्टि तुम को निहारती है,
नूतन प्रकाश भरो दीपक अमन्द का।
वेद का प्रकाश चेतना का चन्द्रहास लिये,
गाते हुए गीत-मीत सविता के छन्द का।
कूद पड़ो युद्ध हेतु तम की अनी को चीर,
ध्वस्त करो अनय अभाव व्यूह द्वन्द का।
बाल-बांका कौन कर सकता है तुम्हारा बन्धु,
दायां हाथ शीश पर है ऋषि दयानन्द का।

सम्पादकीय

❋ फैला है जग में वेद बिना अन्धकार ❋

वैदिक शिक्षा के बिना मनुष्य अपने अनेक जन्मों के पुण्य कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त मनुष्य जन्म को ही व्यर्थ नहीं खोता अपितु प्रारब्धवश प्राप्त सौभाग्य को भी दुर्भाग्य में बदल डालता है। सम्प्रति इसके उदाहरण आशाराम बापू, रामपाल और राम रहीम जैसे अनेकों तथाकथित सन्त हैं जिन्होंने वैदिक ज्ञान बिना अपने जीवन को ही बर्बाद नहीं किया अपितु प्रारब्धवश प्राप्त विपुल भौतिक सम्पदा और यश को भी धूलीसात् कर दिया साथ ही वैदिक ज्ञान से शून्य अपने अनुयायियों को भी अज्ञान के गहरे अन्धकार में धकेल दिया यदि इन तथाकथित सन्तों में स्वल्प भी वेद ज्ञान का प्रकाश होता तो न तो वे स्वयं अपना पतन करते, न अपने अन्धभक्त शिष्यों को अज्ञान के अन्धेरे में मरने और भटकने के लिए छोड़ देते, न वे आस्तिकता का आवरण ओढ़कर घोर नास्तिकता के व्यभिचार आदि कार्यों को करने में प्रवृत्त होते। वैदिक दर्शन कहता है कि परमात्मा का निवास कण-कण में है। संसार की सारी व्यवस्था उसी परमपिता परमात्मा के नियंत्रण में है। जब यह दृढ़ विश्वास व्यक्ति के अन्दर पैदा हो जाता है तब वह सच्चा आस्तिक बन जाता है और उसके मन में भी पापवासना के अंकुर प्रस्फुटित नहीं होते हैं, अन्तःकरण पवित्र होकर ईश्वरीय ज्ञान को प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है उसे ऐसा ज्ञान प्राप्त होने पर सत्यासत्य का विवेक हो जाता है फिर वह कभी भी पाप मार्ग पर चलने का विचार भी नहीं करता है। महर्षि दयानन्द जैसे सच्चे सन्त के रूप में समाज को श्रेयस्कर नेतृत्व प्रदान करता है। असंख्यों मनुष्यों के मानस को पवित्र कर कल्याण मार्ग का पथिक बना देता है।

इसके विपरीत जब व्यक्ति वेदज्ञान से शून्य होता है तब वह अपने स्वरूप को भूल जाता है। सांसारिक वासनाओं के जाल में जकड़ा हुआ मूढ़ होकर प्रारब्धवश प्राप्त वैभव और अधिकारों के मद में मस्त होकर पाप के गहरे गर्त्त में गिर जाता है उसके वैभव से प्रभावित होकर अनेकों वेदज्ञान शून्य मूढ़ मनुष्य भेड़ चाल के समान बिना सोचे एक के पीछे एक पतन के गर्त्त में गिरकर सर्वनाश कर लेते हैं। वर्तमान में आशाराम, रामपाल तथा राम रहीम जैसे स्वयम्भू भगवानों ने आस्था के केन्द्र अपने आश्रमों को व्यभिचार का केन्द्र बना डाला। आंख के अन्धे लोगों ने अपनी प्यारी सन्तान को इन्हीं व्यभिचार के केन्द्रों पर भक्ति भावना से उनके उद्धार के लिए समर्पित कर दिया। उनके आस्था के केन्द्र इन नर पिशाच भगवानों ने उन बेटियों को व्यभिचार का पात्र बना डाला। कुछ बेटियों ने लोक लज्जा के भय से और इन गुण्डों से अपने जीवन को संकट में जानकर मुँह नहीं खोला। परन्तु कुछ बेटियों ने अपनी व्यथा को अपने माँ बाप को बताया तो उन्होंने अपनी बेटियों के वचन पर विश्वास ही नहीं किया और बलात् उन्हें धमकाकर पुनः उसी नरक में डाल दिया। उन बेचारियों पर उल्टा आरोप लगाया कि तुम भगवान की भक्ति में मन नहीं लगाती हो यहाँ से भागने के लिए गुरूजी पर आरोप लगा रही हो। जैसा कि राम रहीम की एक गुमनाम शिष्या ने अपने पत्र द्वारा प्रकट किया है कि हमें यहां श्वेत वस्त्रों में साध्वी के रूप में ईश्वर भक्ति के नाम पर रखा जा रहा है। पर इस नरपिशाच ने जिसे इसके भक्त भगवान के रूप में पूजते हैं इसने हमारा जीवन एक वेश्या के समान बनाकर रख दिया है अपने जीवन को संकट में जानकर हम इस बलात्कारी के विरूद्ध मुँह खोलने से भी डरते हैं क्योंकि इसने ऐसा साहस करने वाली साध्वियों को मृत्यु के घाट उतार दिया। इस प्रकार की वेदना व्यक्त करनेवाली यह अकेली ही नहीं है अपितु अनेकों ऐसी कुमारियों का सतीत्व इन पिशाचों ने नष्ट किया है पर बड़ा आश्चर्य है जब वेदज्ञान का प्रकाश

-शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–63 **संवत्सर 2074** **सितम्बर 2017** **अंक 8**

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

सितम्बर 2017

सृष्टि संवत्
1960853118

दयानन्दाब्दः 193

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
आदर्श गृहस्थी	–महात्मा प्रभुआश्रित महाराज	5–7
संग	–श्यामबिहारी मिश्र	8–11
अन्धश्रद्धा और धार्मिक द्वेष की उत्पत्ति	–बाबू सूरजभान वकील	12–15
मृत्यु का कारण डर भी है	–पं. शिवकुमार शास्त्री	16–17
ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र	–पुरुषोत्तमदास	18–21
किताबी शिक्षा	–डॉ0 गोकुलचन्द नारंग	22
आर्यभूमि		23–24
कन्हाईदत्त		25–27
मानसकार का दुराग्रह		28–31
ब्रह्मचारी की प्रतिज्ञा	–लक्ष्मणनारायण गर्दे	32–33
स्वास्थ्य चर्चा	–स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	34

❁❁❁

वार्षिक शुल्क 150/– **पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये**

वेदवाणी

लेखकः डॉ० रामनाथ वेदालंकार

मित्र–वरुण हमें पाप से छुड़ायें

यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम्।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुंचतमंहसः।। –अथर्व0 4.29.5

शब्दार्थः–

(वरुण मित्र) हे वरुण! हे मित्र! (यौ) जो तुम दोनों (भरद्वाजम् अवथः) भरद्वाज की रक्षा करते हो, (यौ) जो तुम दोनों (गविष्ठिरम्) गविष्ठिर की, (विश्वामित्रम्) विश्वामित्र की और (कुत्सम्) कुत्स की रक्षा करते हो, (यौ) जो तुम दोनों (कक्षीवन्तम् अवथः) कक्षीवान् की रक्षा करते हो, (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) पाप से (मुंचतम्) छुड़ाओ।

भावार्थः–

मनुष्य से जाने–अनजाने पाप या अपराध हो ही जाते हैं, क्योंकि वह अपूर्ण है। जो अपने पाप या अपराध को जान कर पश्चात्ताप करता है और चाहता है कि भविष्य में मुझ से पाप और अपराध न हों, वह जागरूक समझा जाता है। मित्र और वरुण के गुणों का चिन्तन करना हमें पापों तथा अपराधों से बचा सकता है। मित्र परमेश्वर मित्रता का आदर्श देव है। हम भी सज्जनों के प्रति मित्रता का व्यवहार करें, और उनके प्रति पाप या अपराध करके स्वयं अपनी तथा उनकी हानि न करें। जब हम किसी की बहुमूल्य वस्तु चुराते हैं, तब हम तो उस पाप या अपराध का राजकीय दण्ड और ईश्वरीय दण्ड पाते ही हैं, साथ में समाज में हम चोरी का वातावरण पैदा करके समाज की भी हानि करते हैं और जिसकी वस्तु हमने चुराई है, उसे भी हानि पहुँचाते हैं। यदि हम मित्र परमेश्वर से समाज के लोगों के साथ मैत्री का व्यवहार करना सीख लें, तो चोरी, हिंसा आदि से बचे रहेंगे। वरुण प्रभु भी ज्यों ही कोई मनुष्य पाप करता है, त्यों ही वे उसे पाशों से बाँध लेते हैं, दण्ड पाकर ही वह पाश से छूटता है। वरुण के सहस्रों गुप्तचर भी सर्वत्र घूम रहे हैं, उनसे किसी की कोई बात छिपती नहीं है, ऐसा आलंकारिक वर्णन भी वेद करता है, जो वरुण के सर्वदर्शी गुण को सूचित करता है। यदि हमें वरुण का सर्वदर्शित्व सदा ध्यान रहे, तो भी हम पापों एवं अपराधों से बचे रहेंगे, क्योंकि हम सतर्क रहेंगे कि सर्वदर्शी वरुण हमारे दुष्कर्मों को देखकर उनका दण्ड अवश्य देगा।

मन्त्र में मित्र एवं वरुण से प्रार्थना की गयी है कि जैसे आपने भरद्वाज, गविष्ठिर, विश्वामित्र, कुत्स, कक्षीवान् और कण्व को पाप से छुड़ाकर उनकी रक्षा की, वैसे ही हमें भी पापों से छुड़ाइए। ये कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं, वैदिक नाम रख लेने वाले कोई व्यक्ति भी हुए हों यह भी सम्भव है, किन्तु वेद उनसे पहले ही विद्यमान होने के कारण वेदों में उन ऐतिहासिक व्यक्तियों की गाथा वर्णित नहीं हो सकती है। 'भरद्वाज' वह

–शेष पृष्ठ संख्या 7 पर

गतांक से आगे–

आदर्श गृहस्थी

लेखकः महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

पाप क्या है?

साधु– पाप क्या होता है?

बालक– वह कार्य जिससे हमारे शरीर का, मन का अथवा आत्मा का पतन हो उसे पाप कहते हैं अथवा जिससे संसार जाति और समाज को हानि बिगाड़ हो वह पाप है।

साधु– अच्छा कोई चोरी की बात सुनाओ।

कथा

बालक– हमें पिताजी ने बताया था कि एक स्थान पर सत्संग लगा हुआ था बहुत जनसंख्या उपस्थित थी जब सत्संग समाप्त हुआ, एक प्रसिद्ध मान वाला धनी भी बैठा था। उसका एक नवयुवक पुत्र भी वहां उपस्थित था। उसे लघुशंका ने वेग किया, वह उठा जनता की जूतियां मिश्रित पड़ी थीं, उसे अपनी उपानह (जूती) ढूंढ़ने से न मिली परन्तु लघुशंका के वेग से व्याकुल हो रहा था। अपने पिता की उपनाह पर दृष्टि पड़ी और उसे पहनकर दौड़ पड़ा। दूर जाकर लघुशंका करनी थी। इतने में प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी-अपनी उपानाह पहननी आरम्भ कर दी। पिता चूंकि बड़ा धनी था, वह अन्त में नमस्कार करके बाहर आया, देखा तो जूता नहीं था, कुतूहल किया, बहुत से व्यक्ति एकत्रित हो गए दैव वशात् कई पुलिस के अधिकारी तथा सिपाही भी सत्संग में आया करते थे, वे धनी मानी का बड़ा मान करते थे, वे भी आ गये।

जूते की खोज

थानेदार– सेठ जी! कहां रक्खी थी?

धनी– (स्थान दिखाकर) इस स्थान पर रक्खी थी।

सिपाही भी साथ था, थानेदार ने सिपाही को आज्ञा दी कि वहां से जो पादचिन्ह जा रहे हैं, उनकी खोज निकालो। सिपाही पाद चिन्हों का अनुकरण करता-करता उस स्थान पर पहुंचा जहां से वह नवयुवक आ रहा था, देखा कि उसने वही उपानह (जूती) पहन रक्खी है, उसे पकड़ लिया, कहा कि तुम चोर हो! चलो थानेदार साहब के पास। वह बेचारा आश्चर्य तथा चिन्ता में पड़ गया। कहने लगा कहां चोरी की है? मेरे पिता की उपानह है।

सिपाही ने कहा, "कुतूहल भी तो तुम्हारे पिता ने ही मचा रक्खा है"। पकड़कर अन्दर लाया अभी दूर ही था कि पिता देखकर चकित रह गया।

दूर से देखते ही थानेदार ने कहा, इसे हथकड़ी लगा दो और थाने पर ले चलो।

धनी– यह तो मेरा पुत्र है! इतने में वे समीप आ गये।

थानेदार– तुमने क्यों चोरी की?

युवक– मैंने चोरी तो नहीं की, मुझे लघुशंका ने तंग किया अपनी उपानह नहीं मिली, पिताजी की पहन ली और चला गया।

थानेदार– बेशक जूती तुम्हारे पिता की है तुम जानते थे परन्तु तुम्हारे पिता को ज्ञान नहीं। चोरी क्या है, किसी वस्तु को स्वामी की आज्ञा के बिना उठाना। राजकीय नियम के अनुसार यह चोरी है जो मना है।

अब धनी बेचारे को उल्टा झुकना पड़ा। और लोगों को भी। वहां के सन्त उपदेश करने वाले यह कुतूहल सुनकर बाहर आये और कहा देखो पुत्र सचेत रहो, वस्तु पिता की हो अथवा माता की, जो तुम्हारे अपने अधिकार में नहीं उसको उनकी आज्ञा के बिना उठाना राज नियमानुसार पाप है यदि आचार सम्बन्धी पाप नहीं तो भी संस्कार तो चोरी जारी तथा प्रमाद के अवश्य उत्पन्न हो जाते हैं।

मनुष्य की सम्पत्ति

संस्कार ही मनुष्य की सम्पत्ति है अच्छे अथवा बुरे जिसे सदैव काल अपने साथ रखता है।

दण्ड का लक्ष्य क्या है

अब तुम प्रतिज्ञा कर लो कि कभी घर की वस्तु भी बिना आज्ञा न उठाऊंगा। युवक ने प्रतिज्ञा कर दी और सन्त ने थानेदार से कहा अब इसे क्षमा करना श्रेयस्कर है। दण्ड का लक्ष्य अथवा अभिप्राय सुधार ही है।

बालक ने कहा ऐसे–ऐसे उदाहरण हम सदा स्मरण रखते और ध्यान में लाते रहते हैं। और अनेक प्रकार के पापों से बचे रहते हैं।

अभिमान चूर

साधु सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और आशीर्वाद दिया। किवाड़ बन्द कर एकचित्त हो बैठा चित्त में विचार उठने लगे कि कितना उत्तम और श्रेष्ठ गृहस्थ है, वास्तविक साधु तो यही है, मैं तो साधु नाम का हूं मुझे तो अभिमान था कि मैं इनकी भूल को दूर करूंगा परन्तु अब तो मुझे अपनी भूल प्रत्यक्ष हो गई।

वृत्ति बदली

फिर साधु समाहित हो गया थोड़े चिर पश्चात् ऊंघ आ गई।

क्या देखता है कि बहुत सी जनता उपस्थित है और मैं उपदेश कर रहा हूँ और जनता प्रशंसा कर

रही है कि साधु हों तो ऐसे हों आंख खुल गई सोचने लगा मैं साधु हूँ यद्यपि यह गृहस्थी ऊँचे हैं तथापि मैं साधु होने के नाते इनको उपदेश दूं जिससे मैं इनकी दृष्टि में साधु प्रतीत हूँ वृत्ति बदल गई झट देवी को बुलाकर कहने लगा। ए देवी! इधर आइये।

देवी– कर जोड़कर, भगवन् आज्ञा दीजिये।

साधु– अब यह बताए आप जिस समय काम करती रहती हैं आपका मन उसी काम में रहता है अथवा संसार के अन्य-अन्य विषयों में भी दौड़ता रहता है जैसे मन चंचल है।

देवी– मुझे कार्य आरम्भ का तो पता लगता है परन्तु समाप्ति अपने आप हो जाती है। मेरा कार्य मेरे मन तथा इन्द्रियों से होता रहता है किन्तु नाम के आश्रय से। बस और कुछ नहीं जानती।

साधु– अच्छा, तू मेरी माता है तुझे मैं अब देवी के नाम से नहीं पुकारूंगा, माता जी के नाम से सम्बोधित करूंगा।

जाओ तपस्या करो

देवी– फिर आप कृपा करके भोजन कर लीजिए और कहीं एकान्त स्थान पर जाकर अभी साधु बनने के लिए तपस्या कीजिए। आपकी दृष्टि, आपके शब्दों के अनुसार एक पुरुष अकेला माता के साथ भी न रहे, घटिया हो गई है। आप में अब रूप का भेद आ गया है तो रंग का भी आ जावेगा। रंग ही भंग डालता है।

विवेक की प्राप्ति कब होती है

साधु विस्मित हो गया। अपने अन्दर विवेक ज्ञान और तप की त्रुटि को अनुभव करने लगा, कि मेरा तप तो बहुत था, वर्षों तप का जीवन व्यतीत किया, एकान्त और वन में रहा परन्तु स्यात् अभिमान के कारण विवेक प्राप्ति नहीं कर सका।

वास्तविक विवेक तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक अभिमान या अहंकार मनुष्य में रहता है, चाहे कितना ज्ञानी ध्यानी अथवा कर्मकांडी क्यों न हो?

प्रभु करे कि हम लोगों को वास्तविक विवेक की प्राप्ति हो, ताकि आश्रम मर्यादा को पूरा करते हुए आदर्श गृहस्थी बन सकें। ❁❁❁

पृष्ठ संख्या 4 का शेष–

मनुष्य है, जिसके शरीर, मन और आत्मा में बल भरा हुआ है। 'गविष्ठिर' वह है जो वाणी में स्थिर रहता है, वाणी पर जिसका अधिकार है, वेदवाणी जिसने स्थिरता के साथ पढ़ी हुई है। सबके प्रति यथायोग्य मित्र रहनेवाला व्यक्ति विश्वामित्र है। पाप-ताप को काटने के लिए प्रयत्नशील मनुष्य 'कुत्स' है। 'कक्षीवान्' कक्ष्यावान् है, अर्थात् धर्मशील होने के लिए जिसने कमरपेटी कसी हुई है। 'कण्व' निरुक्त में मेधावी वाचक शब्दों में पठित है। इन गुणोंवाले व्यक्ति यदि पापविनाशक मित्र-वरुण की स्मृति मन में बनाये रखें तो पापों एवं अपराधों से सदा मुक्त रह सकते हैं। अतएव मन्त्र में मित्र-वरुण से प्रार्थना की गयी है कि जैसे आप इन्हें पापों से मुक्त रखकर इनकी रक्षा करते हो, वैसे ही हमें पापमुक्त रखकर हमारे रक्षक बने रहो। ❁❁❁

संग

लेखकः– श्यामबिहारी मिश्र

मनुष्य को प्रकृति ने एक सभ्य जीव बनाया है। वह स्वभावशः संग ढूंढ़ता है। संग दो प्रकार से प्राप्त होता है, अर्थात् एक भाग्यदत्त और दूसरा स्वयं अर्जित। बहुतों का विचार है कि मनुष्य दशाओं द्वारा रचा गया है, अर्थात् जैसी अवस्था और संगति में वह रहता है वैसा ही हो जाता है। दो एक दार्शनिकों का यह भी कथन है कि मनुष्य दशाओं का कर्म नहीं, वरन् कर्ता है, अर्थात् अपने इच्छानुसार वह जैसा संग चाहता है वैसा प्राप्त कर सकता है। ये दोनों सिद्धान्त कुछ–कुछ दशाओं में ठीक हैं। जहाँ तक संग भाग्यदत्त है, वहां तक मनुष्य के शील स्वभाव उसके फल हैं। उधर स्वयं अर्जित संग के जो प्रभाव मनुष्य पर पड़ते हैं उनका उत्तरदायित्व उसी पर है। मनुष्य किसी कुटुम्ब में उत्पन्न होता है और दस बारह वर्षों तक अवश्यमेव उसमें रहता है। इस अवस्था में चिर काल पर्यन्त उसे सत्संग अथवा कुसंग मिलता है, किन्तु न इसे पाने का उसने कोई प्रयत्न ही किया था और न इससे वह बच सकता था। इसलिये हम इसे भाग्यदत्त संग मानते हैं।

भाग्यदत्त संग का प्रभाव स्वयं अर्जित संग पर पड़ता है, क्योंकि भाग्यदत्त संग से मनुष्य की जैसी प्रकृति हुई है, उसी के अनुसार वह साधारणतया आने वाले संग का कांक्षी होगा, अर्थात् वह जैसा है वैसा ही संग आगे भी ढूँढ़ेगा। जहाँ तक भूत–संग भविष्य–संग पर अपना प्रभाव डालता है वहाँ तक और केवल वहीं तक, मनुष्य दशाओं का फल कहा जा सकता है। साधारण प्रकृति के मनुष्यों में यह प्रभाव कुछ विशेष बलशाली होगा, किन्तु जिनमें कुछ भी मस्तिष्क–प्रबलता है वे नूतन विचारोत्पादन एवं सुसंग–प्राप्ति में भाग्यदत्त संग द्वारा वंचित नहीं रक्खे जा सकते। मनुष्य का यही गुण उसमें उत्तरदायित्व बढ़ा कर उसे अपनी दशा का कर्त्ता बनाता है।

मनुष्य को दो प्रकार का संग प्राप्त है, अर्थात् मनुष्यों और पुस्तकों का। सत्संग श्रेष्ठतम गुरू है। इससे अच्छी शिक्षा मनुष्य को कहीं से भी नहीं प्राप्त हो सकती। इसलिये उसे उचित है कि अच्छे से अच्छे मनुष्यों और पुस्तकों का संग प्राप्त करे। जो जैसे लोगों और ग्रंथों का संग रखता है वह वैसा ही हो जाता है, वरन् यों कहें कि मनुष्य जैसा होता है वैसा ही संग ढूंढ़ता है। उसका स्वभाव सदा उस के संग से जाना जा सकता है। प्रकृति से ही मनुष्य अनुकरणशील है। इसलिये अच्छे संग में रहने से वह संगियों के सद्गुण प्राप्त करता हुआ दिनों दिन उन्नति करता जाता है। किन्तु कुसंग में पड़ने से उसमें क्रमशः दुर्गुणों की वृद्धि होती है। यह एक प्राकृतिक नियम है कि मनुष्य जिस बात को बहुत देखता है उसे वह साधारण समझने लगता है और इस प्रकार वे ही कर्मसमुदाय उसके साधारण कार्यों में प्रविष्ट भी हो जाते हैं। यदि कोई कुसंगति में पड़ा, तो बुराइयाँ देखते–देखते वह उन्हें साधारण समझने लगता है, और चाहे इनसे पहले घृणा भी रखता हो, किन्तु धीरे–धीरे घिसती हुई वह घृणा लुप्तप्राय हो जाती है। संसार उन्नतिशील है। प्रत्येक मनुष्य जिस गुण अथवा अवगुण को ग्रहण करता है, उसे दिनों दिन बढ़ता ही जाता है। इसलिये

कुसंग में पड़ने से मनुष्य पहले छोटी–छोटी बुराइयों को साधारण समझता है, और जब वे बुराइयाँ इस प्रकार उसकी प्रकृति में मिल जाती हैं, तब वह उनसे कुछ बड़ी बुराइयों को भी साधारण समझने लगता है और वे भी उसकी प्रकृति में मिलने लगती हैं। इसी प्रकार क्रमशः बड़ी से बड़ी बुराई उसे साधारण समझ पड़ती है और उसकी प्रकृति का अंग बन जाती है। एक बार एक महाशय ने, जो कभी कोई नशा नहीं खाते थे, अपने ग्रामवासी एक अफीमची से कहा कि अफीम तो हर प्रकार से हानि ही पहुँचाती है, तब तुम उसे क्यों खाए जाते हो, छोड़ क्यों नहीं देते? अफीमची साहब, जो स्वभावशः अफीम का खाना बहुत ही साधारण समझते थे, बोले–"दुर्दशा! साँची कहियो। भला कौन अफीम नाईं खाति है? का हम हीं खाइयति है? आजु दुनियाँ अफीम खाय रही है। का ददुआ तुम नाहिं खाति हौ? तुम अमीर हौ, तुम्हारी छिपी है; हम गरीब हनु, हमारी नाई छिपति है। हमारे मुँह मा माछी भन्न मचौती हैं। तुम गिजा उड़ावति हौ, तुम्हारो चेहरा दमकि रहो है।" वे अफीम का खाना ऐसा साधारण समझते थे कि उनके विचार से सभी लोग उसे खाते थे।

इसी भाँति सत्संगति से मनुष्य की प्रकृति दिनों दिन उच्च होती जाती है। जैसे कुसंगति से वह एक के पीछे एक बुराई को साधारण समझता हुआ अपनी प्रकृति का अंश बनाता हुआ उत्तरोत्तर उन्नति करता है; जिससे उसकी प्रकृति दिनों दिन परिष्कृत होती जाती है। जिन भलाइयों का करना वह अनुभव के अभाव से असाधारण एवं कठिन समझता था, उन्हें भी अपने से उच्च प्रकृति वाले मनुष्यों को साधारणतया करते देख स्वयं भी करने लगेगा। इस प्रकार अच्छे एवं बुरे व्यवहार स्वयं तो भले या बुरे हैं हीं, किन्तु उदाहरण द्वारा संसार में उन गुणों एवं अवगुणों की वृद्धि करके और भी पूज्य अथवा गर्हित हो जाते हैं, क्योंकि मनुष्य का प्रत्येक कर्म उससे निर्बल प्रकृतिवाले मनुष्य को तदनुसार कर्मसमुदाय की ओर न चाहते हुए भी खींचता है। इसी से महात्मा तुलसीदास जी ने आज्ञा दी है कि–

को न कुसंगति पाय नसाई। रहै न नीच मते गरुआई।।
सत्संगति मुद मंगल मूला। सोइ फलसिद्धि सब साधन फूला।।
सठ सुधरहिं सत्संगति पाई। पारस परसि कुधातु सोहाई।।

इसी प्रकार गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने आज्ञा दी है कि "हे अर्जुन! तीन लोक में मुझे कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है, कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो मैंने प्राप्त न कर ली हो अथवा न कर सकता हूँ, किन्तु फिर भी मैं कर्मों ही में वर्तमान हूँ। यदि मैं ही आलस्य को छोड़कर अच्छे कर्मों में न लगूँ, तो हे पार्थ! सब मनुष्य मेरे ही मार्ग में लग जावें, अर्थात् कर्म छोड़ देवें। यदि मैं कर्म न करूँ तो सब लोग (उदाहरण के अभाव से) भ्रष्ट हो जावें। इस दशा में मानों मैं ही वर्णसंकर का करनेवाला और सब मनुष्यों का विनाशक हूँ।"

उपरोक्त कथन में भगवान् ने उदाहरण की महिमा दिखलाई है। यही उदाहरण का सिद्धान्त संगभव गुण दोषों का मूल कारण है। सत्संगति भी अनेक प्रकार की होती है। मनुष्य को जिस गुण विशेष की वृद्धि अपने में करने अभीष्ट हो, उसी प्रकार के गुणियों का संग उसके लिये सुसंग होगा। संग में दो भाव प्रधान हैं। जो मनुष्य सभा सोसाइटियों अथवा साधारण मेल मिलापों में भी अधिक बोलने का उत्सुक रहता है, वह मानों गुरु भाव से संग ढूँढ़ता है, अर्थात् शिष्य पाने का आकांक्षी है। उधर जो पुरुष

बोलता कम और दूसरों की सुनता विशेष है, वह मानों शिष्य भाव से संग में प्रवेश करता है। अपने अनुभव एवं ज्ञान द्वारा प्राप्त विचारों का जो जितना कथन करता है, मानों वह औरों को उतनी ही शिक्षा देता है। इसलिये प्रत्येक पुरुष का पवित्र कर्त्तव्य है कि गुरु का कार्य उठाने के पूर्व सोच लेवे कि उसके उपदेश कैसे हैं। प्रगल्भता अनुचित उदाहरण दिखलाती है और वक्ता और मूर्खता भी प्रकट कर देती है।

इन्हीं उपरोक्त विचारों से प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह समाज में तभी बोले जब बोलना न बोलने से श्रेष्ठ हो, अर्थात् जब उसका कथन दूसरों के लिये शिक्षाप्रद अथवा हितकर हो। समाजों में बहुधा देखा गया है कि प्रत्येक मनुष्य इस बात का समय ढूँढ़ा करता है कि कब मौका पाऊँ और अपनी बात कह दूँ। प्रत्येक जन-समुदाय में दो चार ऐसे बकवादी होते हैं कि अपना धृष्टता के कारण अपनी ही अनर्गल बातें बके चले जाते हैं और दूसरों को कुछ कहने का समय ही नहीं देते। ऐसे मनुष्यों को अपनी मूर्खता पर लज्जित होना चाहिए, किन्तु वे समाज का समय नष्ट करने से इतने प्रसन्न होते हैं कि अपने कथनों का अर्धकाल यदि बातचीत में लगाते हैं तो शेषार्ध हँसने में। मूर्ख के लिये प्रगल्भता एक बहुत बड़ा दूषण है, क्योंकि इससे उसकी मूर्खता का प्रकाश बहुत अधिकता से होता है। मौन मूर्खों का बहुत बड़ा अवलंबन है क्योंकि इस प्रकार शिष्य भाव ग्रहण करने से वह समाजों में औरों के कथनों द्वारा कुछ तो ज्ञान वृद्धि अवश्य ही करेगा। यह बात हमारे अनुभव में भी बहुत अधिकता से आई है। कहा भी है कि-

"विभूषणं मौनमपंडितानाम्"।

और भी-

निज मन मैं अनुमानि मौन विधि भलो बनायो।
यामैं गुप्त रहस्य अमित रचिकै सुख पायो।
अलप छंद मैं कहौं कहाँ लगि तब करतापन।
मूरखता को वेष मनो बिरच्यो यह ढापन।।
जहँ सब गुनमंडित अतिविशद वर वुधिवंत समाज है।
तहँ अज्ञानिन के हेत यह भूषण परम दराज है।।

ध्यानपूर्वक देखने से प्रकट होगा कि मौन केवल मूर्खों का भूषण ही नहीं है, वरन् उन विद्वानों के लिये भी परमावश्यक है जो अपनी विद्या और अनुभव को दिनों दिन वर्धमान करने के उत्सुक हैं। पृथ्वी निर्वीज नहीं है और सभी प्रकार के अच्छे से अच्छे गुणी इसमें वर्तमान हैं। अतः संग समाजों में भी एक से एक बढ़कर गुणी मिलते हैं, किन्तु वे अपने कथन सुनाने के लिये मूर्खों से होड़ लगाना पसन्द नहीं करते। यदि लोग उनके उच्च विचार सुनने के उत्सुक हों तो उनसे अवश्यमेव लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि-

गूढ़ौ तत्व न साधु दुरावहिं। सज्जन उपकारी जब पावहिं।

एक यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि प्रगल्भ पुरुष सत्यवादी नहीं हो सकता। उसके मुँह से न चाहते हुए भी बहुभाषिता के कारण झूठ कथन निकल जायगा। बक्की मनुष्य अपने ध्यान को एकाग्रता से शुद्ध करने में बहुधा असमर्थ रहेगा। इसीलिये हमारे यहाँ अनेकानेक ऋषिगण मौन-व्रत

धारण करते थे और अब भी करते हैं। पाश्चात्य देशों में भी कैकर नामक एक सम्प्रदाय है, जिसका यह विश्वास है कि यावज्जीवन कोई भी अनावश्यक कथन कभी न किया जाय। ये लोग सत्यता पर इतना अधिक ध्यान रखते हैं कि अटकल से कोई बात कहते ही नहीं, क्योंकि उसके असत्य होने का भय है। यदि पाँच बजकर 58 मिनट हों और समय पूछने पर कोई छः बजे बतलावे, तो कैकर कह देगा कि यह कथन अशुद्ध है, क्योंकि छः बजने में दो मिनट शेष हैं। कैकरों की धर्मसभा होने पर किसी प्रकार का कोई व्याख्यान आदि नहीं होता। सैकड़ों मनुष्य एकत्र होकर अपने प्रकार से ईश्वर का चिंतन आदि करते हैं लेकिन मुख से प्रायः कोई एक शब्द भी नहीं निकालता। यदि किसी को बड़ा ही धार्मिक उद्वेग आया तो शायद कभी दो एक बातें कह दी गई। कैकरों की सभाओं में बहुधा मौन-भंग नहीं होता।

समाजों में जो मन में आवे वही अनाप शनाप बक डालना मूर्खता की पराकाष्ठा है। विद्वत्तापूर्ण एवं समयानुकूल बातचीत करने की शक्ति बहुतों के पास नहीं होती। सभाचातुर्य एक बहुत बड़ा गुण है। बातचीत करने में वैविध्य की बड़ी आवश्यकता है। जो मनुष्य सभी प्रकार के उचित वार्तालापों में वास्तविक अनुरक्ति प्रकट कर सके, वह सभी प्रकार के समाजों में सत्कारित होगा और सबसे प्रसन्नता लाभ कर सकेगा। अधिकता से समाजों में ऐसी बात कहना उचित है कि जिससे उस स्थान में एकत्रित अधिकांश लोग अनुरक्त हों। किसी का समय नष्ट करने का कोई पुरुष अधिकार नहीं रखता। यदि आप समाज में कोई ऐसी बातें कहें जिनसे अधिकांश लोगों को उदासीनता हो तो भी यदि वे सभ्य हैं, तो वहाँ से उठ न जावेंगे। न केवल इतना वरन् सज्जनता के कारण शील संकोचवश उन्हें सभ्यता के नियमानुसार आप के कथनों में ध्यान भी लगाना होगा। फिर आप ही सोचिए कि इतने लोगों के समय नष्ट करने का आपको कौन सा प्राकृतिक अधिकार है? अनुचित हानि एवं लाभ से मनुष्य को सदैव बचना चाहिए। दूसरे को अनुचित हानि पहुँचानी भी सर्वतोभावेन तिरस्करणीय है। प्रायः देखा गया है, कि साधारण मनुष्य अपने ही पेशे की बातचीत समाज में छेड़ते हैं। इसको अंग्रेजी में "Shop-talk (दुकानदारी की बातचीत) कहते हैं। इसका चलाना मनुष्य की प्रचंड मानसिक दुर्बलता का बोधक होता है और दिखलाता है कि ऐसा मनुष्य तेली वाले बैल के समान कोल्हू की कोठरी के बाहर नहीं निकल सकता। प्रायः सभी बातों में आनिर्वृत्य त्याज्य है। किसी को यह अधिकार नहीं है कि सभ्य समाज में भी कथनों द्वारा मानों अपनी दुकान खोल देवे। बहुत से लोग समाज में भी मानों दूसरों के दोष निरीक्षण करने ही को जाते हैं। सभी को अश्लाघ्य समझनेवाला मनुष्य बड़ा ही पोच होता है। गुण दोष सबमें होते हैं, किन्तु दुष्ट लोग कौवों के समान घर के श्रेष्ठतर भागों को छोड़ जाजरूरों ही पर बैठने की पात्रता रखते हैं। दुष्टों का यह एक बड़ा चिह्न है कि वे दूसरों के गुणों के लिये ऐसे ही अंधे होते हैं जैसे कि अपने अवगुणों के लिये। कहा भी है कि दुष्ट पुरुष दूसरों के सरसों बराबर दोष देखता है किन्तु अपने बेल से बड़े दोषों तक को देखता हुआ भी नहीं देखता है। यदि किसी में दूषण हो भी अथवा वह अनुचित कथन करे तो भी बात-बात में प्रतिकूलता करने की आदत घृणास्पद है। सभ्य लोग अनावश्यक प्रतिकूलता करते ही नहीं और जहाँ आवश्यकतावश उन्हें प्रतिकूलता करनी ही पड़ती है, वहाँ भी इस सुन्दरता से कथन करते हैं कि चित्त प्रसन्न हो जाता है। सभी बातों को मान लेना झुठाई का बढ़ाना है और अनुचित प्रतिकूलता घृणास्पद है, इसलिये सुधी पुरुष मध्यवृत्ति ग्रहण करते हैं। कहा भी है कि-

साँचु प्रिय मुनि प्रिय बानि को कथनहार परम प्रवीण मन माहिं मोद पायो है।

-(शेष अगले अंक में)

अन्धश्रद्धा और धार्मिक द्वेष की उत्पत्ति

लेखकः बाबू सूरजभान वकील

सांसारिक वस्तुओं की तनिक भी जाँच करने से सहज ही जाना जा सकता है कि संसार का सारा खेल वस्तु–स्वभाव के अटल नियमों पर चल रहा है और संसार ही वस्तुओं का स्वभाव अटल होने के कारण ही हम उनको व्यवहार में ला सकते हैं। इस समय अग्नि का जो स्वभाव है, अर्थात् आज वह जिस प्रकार जलाती, पकाती, उजेला करती और गरमी पहुँचाती है, लाखों–करोड़ों वर्ष पहले भी उसका यही स्वभाव था और आगे भी यही रहेगा। इसी दृढ़ विश्वास पर हम अग्नि को जलाने, पकाने, उजेला करने और गरमी पहुँचाने आदि के काम में लाते हैं। यदि अग्नि का यह स्वभाव अटल न होता, अदलता बदलता रहता, अर्थात् कभी तो यह अग्नि बर्फ के समान ठंडी हो जाती और कभी बिजली की तरह गरम, कभी इससे साँप, बिच्छू निकला करते और कभी अंगारे, या कभी इसमें से आम, अंगूर, नारंगी, सेव आदि मेवे पैदा हुआ करते और कभी शेर, चीते आदि, तो यह मनुष्य आग के पास कभी फटकता भी नहीं। परन्तु ऐसा नहीं होता है। मनुष्य को दृढ़विश्वास है कि आग का जो स्वभाव आज है वही कल था और वही आगे भी रहेगा। इसीलिए वह बेफिकरी के साथ उसे काम में लाता है। इसी प्रकार यदि खेत में गेहूँ बोने पर कभी तो उससे कंकर, पत्थर पैदा हुआ करते और कभी हीरे, जवाहरात आदि, तो मनुष्य कभी गेहूँ बोने का साहस न करता। क्योंकि ऐसी दशा में मनुष्य को यही संदेह रहता कि न जाने कौन वस्तु पैदा हो और उसका क्या परिणाम निकले। परन्तु गेहूँ बोने से सदैव गेहूँ ही पैदा हुआ करता है, यहाँ तक कि लाल गेहूँ बोने से लाल पैदा होता है और सफेद बोने से सफेद। इसलिए मनुष्य बेखटके गेहूँ बोता है और गेहूँ ही काटता है। इसी प्रकार संसार की प्रत्येक वस्तु को हम इसीलिए बर्ताव में ला रहे हैं कि प्रत्येक वस्तु का जो स्वभाव आज है वही लाख वर्ष पहले था और वही आगे भी बना रहेगा।

इसी आधार पर मनुष्य वस्तु–स्वभाव की खोज करके वस्तुओं के स्वभावों के अनुसार उनको अपने कामों में लाता है। लोहे और पीतल के टुकड़ों से बनी हुई घड़ी टक–टक करती हुई चलती है। यह शक्ति किसी मनुष्य ने पैदा नहीं की है, वरन् लोहे और पीतल में यह शक्ति पैदा सदा से थी और सदा ही रहेगी। हाँ, जबसे मनुष्य ने यह बात खोज निकाली है कि लोहे और पीतल के टुकड़ों में यह शक्ति है कि उनको विशेष प्रकार से बनाने और जोड़ने से घड़ी बन जाती है तभी से वह घड़ी बनाने लगा है। इसी प्रकार एंजिन, तारबर्की, फोनोग्राफ, वायस्कोप आदि अद्भुत–अद्भुत चीजें जिन वस्तुओं से बनती हैं उन वस्तुओं को मनुष्य कहीं स्वर्ग से उठाकर नहीं लाया है और न वहाँ के देवता ही आकर उनमें यह शक्ति पैदा कर गये हैं, बल्कि ये सब वस्तुयें पृथ्वी पर सदासे थीं और सदा से ही इनमें फोनोग्राफ और वायस्कोप आदि बनाने की शक्ति मौजूद थी; परन्तु मनुष्य को यह मालूम नहीं था कि किस वस्तु को

कितने परिमाण में और किस रीति से जोड़ने से एंजिन, तारबर्की, फोनाग्राफ आदि बनते हैं, इसीलिए पहले ये चीजें नहीं बनती थीं, परन्तु जब खोजी मनुष्यों ने ये बातें मालूम कर लीं तब ये चीजें भी बनने लगीं।

संसार की वस्तुओं में इनसे भी अधिक आश्चर्यजनक और अद्भुत रूप बन जाने की शक्ति है, इस कारण मनुष्य ज्यों-ज्यों संसार की वस्तुओं की शक्तियों को जानता जावेगा त्यों-त्यों वह अनेक नई-नई वस्तुयें बनाता जावेगा। संसार की वस्तुयें अनन्त हैं और उनकी शक्तियाँ भी अनन्त हैं, इसलिए मनुष्य को सांसारिक वस्तुओं की नई-नई शक्तियाँ खोजने और नई-नई वस्तुयें बनाने का मौका सदा ही मिलता रहेगा।

परन्तु संसार के सभी मनुष्यों में एक-सी बुद्धि नहीं रहती है-किसी में थोड़ी और किसी में बहुत हुआ करती है। यही कारण है कि एक मनुष्य तो अपनी बुद्धि से नवीन वस्तु बनाता है और दूसरा देखकर आश्चर्य करने लगता है। इसी प्रकार सब देशों के मनुष्यों में भी एक समान विद्या का प्रचार नहीं हुआ करता है। यही कारण है कि आजकल यूरोप और अमेरिका के लोग तो नई-नई चीजें निकालते हैं, परन्तु हिन्दुस्तान के लोग उनको देखकर भी वैसी नहीं बना सकते हैं; और अफ्रिका के हबशी तो ऐसे मूर्ख हैं कि वे उनकी बनाई हुई चीजों को उपयोग में भी नहीं ला सकते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक समय भी एक-सी बुद्धि वाले मनुष्य नहीं होते हैं। इसी यूरोप के लोग, जो अब से दो चार हजार वर्ष पहले बिलकुल मूर्ख और जंगली अवस्था में थे, आज अपने बुद्धिबल से सारे संसार को चकित कर रहे हैं और वही हिन्दुस्तानी जो अबसे दो चार हजार वर्ष पहले अपने बुद्धिबल के कारण संसार के शिरोमणि बने हुए थे आजकल हाथ पर हाथ रक्खे हुए बैठे हैं और एक जरासी सुई तक के लिए विदेशियों के मोहताज हो रहे हैं।

इस अन्तर का कारण यही है कि जो गेहूँ बोबेगा वह गेहूँ बटोरेगा और जो काँटे बोबेगा वह काँटे पायेगा। अर्थात् जो मनुष्य अपनी बुद्धि को जिस काम में लगावेगा वह उसी कार्य में उन्नति कर सकेगा। मतलब यह है कि जो लोग संसार की वस्तुओं की शक्तियाँ ढूंढ-ढूंढकर उनसे नई-नई वस्तुयें बनाने की कोशिश करेंगे वे नई-नई वस्तुयें बनाकर स्वयं सुख उठावेंगे और दूसरों को भी सुख पहुँचावेंगे। यही नहीं, अपने से हीनबल और हीनबुद्धि लोगों के प्रभु भी बन जायेंगे; और जो लोग घमंड में आकर, सुस्त पड़े रहकर, या विलासिता में फंसकर इन नवीन-नवीन वस्तुओं के खोजने और बनाने के काम को व्यर्थ खटराग समझेंगे वे महामूर्ख रहकर अन्य देशवासियों के गुलाम बन जायेंगे। इसी प्रकार जो देश नवीन-नवीन खोजों और नवीन-नवीन वस्तुओं को बनाने के कारण सबका शिरोमणि हो गया है वह जब इन बातों की ओर उदसीनता प्रकट करने लगेगा या इन सब कामों को छोड़ बैठेगा तब वह भी अवनत होकर दूसरों का गुलाम बन जायगा। ठीक ऐसी ही दशा आजकल हिन्दुस्तान की हो रही है। एक समय जो अपनी विद्या बुद्धि के कारण बहुत ऊँचे चढ़ गया था, वही आज अपनी अकर्मण्यता के कारण नीचे गिर गया है और पुनः ऊपर उठने की सुधि भी नहीं करता है।

इस कथन का तात्पर्य यह है कि इस संसार में अपनी–अपनी करनी के अनुसार कभी किसी देश के मनुष्य बुद्धिमान् बन जाते हैं और कभी बुद्धिहीन, कभी संसार–शिरोमणि बन जाते हैं और कभी कुली–गुलाम, कभी वे विद्या के स्वामी समझे जाते हैं और कभी महामूर्ख। एक बार बिलकुल आहिस्ता–आहिस्ता उसी क्रम से होता है जिस क्रम से कि मनुष्यत्व की प्राप्ति अध्याय में कहा गया है।

संसार की वस्तुयें अनन्त हैं और एक–एक वस्तु की शक्तियाँ भी अनन्त हैं। इसलिए संसार की इन सब वस्तुओं की मिलावट से जो अनन्तानन्त प्रकार के कार्य उत्पन्न होते हैं उन सभी के कारणों को समझना मनुष्य शक्ति से परे है। बेचारे साधारण लोग तो यह मोटा सिद्धान्त भी नहीं समझ सकते हैं कि कोई कार्य बिना कारण के नहीं हुआ करता है और प्रत्येक कार्य का कारण संसार की इन वस्तुओं में ही मौजूद रहता है। अर्थात् वस्तु–स्वभाव के अनुसार ही संसार के सब कार्य बनते हैं। वस्तु स्वभाव के विरुद्ध न तो कभी कोई कार्य हुआ है और न हो सकता है। इसलिए जब मनुष्य ऐसे कामों को देखते हैं कि जिनका वे कारण नहीं जान सकते हैं तब यही समझ लिया करते हैं कि ऐसी कोई गुप्त शक्ति अवश्य है जिसने वस्तु स्वभाव के विरुद्ध यह कार्य किया है। यहाँ तक कि नजरबन्दी का तमाशा करनेवाले अर्थात् अपने हाथ की चालाकी से अद्भुत–अद्भुत खेल दिखाकर पैसा माँगनेवाले मदारियों और जादूगरों का तमाशा देखकर भी वे लोग यही कहा करते हैं कि कोई जादू–मंतर सिद्ध करके या किसी भूतप्रेतादि को वश में करके उसकी शक्ति से ही ये लोग ऐसे असंभव कार्य कर दिखलाते हैं। यही कारण है कि अफ्रिका देश के हबशी आदि मूर्ख और जंगली मनुष्य मृत्यु तथा बीमारी आदि के भी देवता मान बैठे हैं और बलवान् मनुष्यों को खुशामद तथा भेंट आदि के द्वारा खुश करने का प्रयत्न किया करते हैं।

ये जंगली मनुष्य जब तक रसोई बनाना, खेती करना आदि काम नहीं सीख जाते हैं और पशुओं की तरह प्रकृति से पैदा हुई वस्तुओं पर ही अपना जीवन–निर्वाह करते हैं, तब तक तो केवल मृत्यु और बीमारी के देवताओं को ही मानते हैं, परन्तु जब थोड़ीसी उन्नति करके खेती आदि करने लगते हैं तब मृत्यु और बीमारी के देवताओं के सिवा अन्य कई प्रकार से हानि पहुँचानेवाले और और देवताओं को भी मानने लगते हैं। जैसे कि जंगल में आग लगकर सर्वनाश हो जाने के भय से वे अग्नि को एक भयानक देवता मानकर पूजने लगते हैं, फिर आँधी से छप्पर आदि के गिर पड़ने और ओलों से खेती बर्वाद हो जाने पर आँधी और ओलों के देवता भी मान लेते हैं। टिड्डियों के आने और सारी खेती के चर जाने पर वे टिड्डीदल भेजनेवाला एक देवता मान बैठते हैं और इसी तरह पानी बरसाने, खेती बढ़ाने, प्रकाश करने आदि अनेक कार्यों के अनेक देवता मानने लगते हैं और इन सबको उसी रीति से राजी रखने की कोशिश करते हैं जैसे कि वे अपने से प्रबल और शक्तिसम्पन्न मनुष्यों को राजी रखने के लिए किया करते हैं। अर्थात् हाथ जोड़ना, सिर नवाना, खुशामद करना, स्तुति गाना, मनुष्य और पशुआदि की बलि देना, अर्थात् उन्हें मारकर उनका मांस चढ़ाना, आदि जिन–जिन बातों से वे अपने समय के प्रबल मनुष्यों को खुश करते हैं उन्हीं सब बातों से अपने उन कल्पित देवताओं को भी खुश रखने का प्रयत्न करते हैं।

यह पहले कह आये हैं कि मनुष्य में बुद्धि विचार और आपस में बातचीत करने की उत्तम शक्तियों के साथ-साथ क्रोध, मान, माया, लोभ आदि ऐसी शक्तियाँ भी हैं कि जिनके अत्यधिक बढ़ जाने पर मनुष्य अपनी बुद्धि और वचनशक्ति से भी विरुद्ध काम लेने लग जाता है, अर्थात् झूठ, फरेब आदि बुरे व्यवहारों का व्यवहार करने लगता है। इसी कारण इन महामूर्ख जंगली लोगों में जो मनुष्य कुछ अधिक चालाक होते हैं वे इन भोले लोगों को ठगने के लिए किसी देवी देवता के एजेण्ट बन बैठते हैं और कहने लगते हैं कि हमने अमुक देवता को अपनी भक्ति से ऐसा प्रसन्न कर लिया है कि जब हम चाहते हैं तभी वह हमको दर्शन दे जाता है और जो कुछ हम कहते हैं वही करने को तैयार हो जाता है। इसके सिवा हमने एक ऐसा मंत्र सिद्ध कर लिया है कि जिससे अमुक देवता हमारे काबू में आ गया है और हमारी आज्ञा के अनुसार कार्य कर देता है। यही नहीं, ये चालाक लोग नवीन-नवीन देवता भी बना लिया करते हैं और अपनी मायाचारी से उन मूर्खों के मन में विश्वास जमा देते हैं कि अमुक देवता ने रात को स्वप्न मे आकर मुझसे कहा है या अन्य किसी रीति से दर्शाया है कि मैं यहाँ आकर महामारी या दुर्भिक्ष फैलाऊँगा, या इसी प्रकार अन्य कोई भयंकर बात, जो उस समय ठीक फबती हो कह सुनाते हैं। ये चालाक लोग उस देवता का रूप भी ऐसा अद्‌भुत और भयंकर बतलाते हैं कि जिससे लोगों को पूरा-पूरा यकीन हो जाय कि सचमुच ही वह देवता महाशक्तिशाली होगा। ये लोग उस देवता के अनेक हाथ पैर बतला कर, अद्‌भुत प्रकार का मुंह वर्णन करके और अद्‌भुत प्रकार की सवारी पर आरूढ़ बतलाकर लोगों के हृदय पर उसका ऐसा आतंक जमा देते हैं कि जिससे लोग तुरन्त ही डर जाते हैं और उसे प्रसन्न करने की कोशिश करने लगते हैं। देवता के मनाने और भेंट चढ़ाने में उन एजेण्टों की बतलाई विधि का अक्षरशः पालन किया जाता है और तब देवता के साथ-साथ उनके एजेण्टों की भी खूब छनने लगती है।

-(शेष अगले अंक में)

सत्य प्रकाशन के पुनः प्रकाशित उपलब्ध प्रकाशन

शुद्ध रामायण सजिल्द	मूल्य 220)	गृहस्थ जीवन रहस्य	मूल्य 20)
शुद्ध रामायण अजिल्द	मूल्य 170)	श्रीमद् भगवद्गीता एक सरल अध्ययन	मूल्य 20)
शुद्ध हनुमच्चरित	मूल्य 60)	सन्ध्या रहस्य	मूल्य 20)
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	मूल्य 40)	गीता तत्व दर्शन	मूल्य 20)
यज्ञमय जीवन	मूल्य 30)	दयानन्द और विवेकानन्द	मूल्य 15)
भारत और मूर्तिपूजा	मूल्य 30)	बाल मनुस्मृति	मूल्य 12)
मील का पत्थर	मूल्य 20)	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	मूल्य 12)
भ्रांति दर्शन	मूल्य 20)	ओंकार उपासना	मूल्य 12)
चार मित्रों की बातें	मूल्य 20)	दादी पोती की बातें	मूल्य 10)
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	मूल्य 20)		

सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

मृत्यु का कारण डर भी है

लेखक : पं. शिवकुमार शास्त्री

मनुष्य जैसा सुनता या पढ़ता है उसी के अनुसार उसका विश्वास भी होता है। विश्वास के अनुसार डर भी होता है। हिन्दुओं की मूर्ति पर विश्वास है। अतः यदि किसी हिन्दू को मूर्ति उखाड़नी पड़े तो वह बहुत डरेगा। यदि किसी कारणवश उसने ऐसा किया तो वह अवश्य दुःख उठावेगा। पर मुसलमानों का इस पर विश्वास नहीं है अतः उन्हें यह दुःख नहीं होता। मनुष्य अपने विश्वास के अनुसार ही सारा सुख-दुःख उठा रहा है। मनुष्य कहता है कि सब कुछ टल सकता है पर मृत्यु नहीं टल सकती। यह एक जन्म का विश्वास है। मृत्यु इसी वजह से आती है कि, उसका आना लोग ध्रुव समझते हैं। सारे संसार का मृत्यु पर विश्वास है-संसार के सभी मजहब मृत्यु को अटल मानते हैं-यही कारण है कि मृत्यु अटल है। जितने साधु सन्त हैं ऐसा भी कहा करते हैं कि, मृत्यु तुम्हारे सिर पर है, मृत्यु को न भूलना; मृत्यु को याद रखना। जो कहता है यही कहता है, यह कोई नहीं कहता कि मृत्यु को भूल जाओ। यदि याद करना है, तो ईश्वर को याद करो जो अमर है। अमर को स्मरण करने से तुम भी अमर हो जाओगे। अमर और अमृतत्व की खोज करो, तुम भी वही हो जाओगे। वेद में कहा है-"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" उसका जानने वाला-उसका खोजने वाला वही हो जाता है। खोजने पर मालूम होता है कि हम भी वही हैं। हम अन्य नहीं हैं। भूल से अपने को अन्य मानते हैं। वेद कहता है-

"अन्योऽसौ अन्योऽहमस्मीति न सवेद यथा पशुः।"

मैं अन्य हूँ, वह ईश्वर अन्य है, ऐसा मानने वाला वेद के अनुसार पशु है। वेद, वेदान्त और उपनिषदों का यह मुख्य सिद्धान्त है कि, मनुष्य ब्रह्म है, अन्य नहीं। ब्रह्म अमर है तो हम भी अमर हैं। यदि ब्रह्म नहीं मर सकता तो हम भी कदापि नहीं मर सकते। एक सन्त ने ठीक ही कहा है-

**दोहा- "राम मरें तो हम मरें, नातरु मरे बलाय।
सांचे गुरु का बालका, मरे न मारा जाय।।"**

अहा! कैसा अच्छा सिद्धान्त है! इन बातों को तत्व से समझो; इनमें तत्व है। ये निरर्थक नहीं कहे गए हैं-ये पागलों के वचन नहीं हैं। अमर होना स्वाभाविक है-यह मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। पर ज्ञान न होने के कारण मनुष्य इस बात को नहीं समझता और मृत्यु से अत्यन्त भयभीत होता है। पुरानी कथा है-एक बार यमराज ने मृत्यु को बुलाकर कहा कि तुम महामारी और विशूचिका लेकर मृत्यु लोक के अमुक जिले में जाओ और 400 मनुष्य मार लाओ। मृत्यु महामारी और विशूचिका के साथ आई और एक दिन में आठ सौ मनुष्य मर गए। यमराज ने मृत्यु से जबाब तलब किया कि हमने तो चार ही सौ मांगे

थे आठ सौ क्यों लाए? उसने कहा–हमने भी मारा चार ही सौ पर डरकर चार सौ और मर गए। इसमें हमारा क्या दोष है? यह कथा तो अवश्य असत्य है। पर यह जिस तात्पर्य पर कही गई वह सर्वथा ठीक है। डर कर आधे ही नहीं मरते; हमारा तो यह सिद्धान्त है कि सभी डर कर मरते हैं। मरना डर से होता है स्वाभाविक नहीं। हमारा स्वाभाविक धर्म अमृतत्व है, मृत्यु नहीं। पर बहुत से वेदान्ती कहेंगे कि शरीर अमर नहीं है; आत्मा अमर है। यह ठीक नहीं है। वेदान्त कहता है कि द्वैत है ही नहीं, संसार में सिवाय ब्रह्म के दूसरा कुछ नहीं है। वेदान्त कहता है कि द्वैत भ्रम से भाषता है। यदि सब कुछ ब्रह्म ही है तो शरीर अन्य कैसे? साधु लोग यह जानते हुए भी बड़ी भूल करते हैं। साधु लोग उस अजर अमर ईश्वर का स्मरण नहीं करते, किन्तु कहते हैं–याद रखना।

"तुम्हें जाना जरूरी है।"

उपदेशक अपने उपदेश में, पंडित अपनी कथा में, मुल्ला अपने बाज में, पादरी अपने लेकचरों में यही कहा करते हैं कि मनुष्य की मौत जरूरी है। यह एक न एक दिन आने वाली ही है। इन सब बातों के सुनने तथा सबको मरते हुए देखकर लोगों पर मृत्यु का बड़ा भारी आतंक छा गया है। इसी विश्वास ने, इसी डर ने, इसी विपरीत ज्ञान ने, मृत्यु का आना ध्रुवकर दिया है।

हम बराबर देखते हैं कि जो आज है वह कल नहीं रहा। एक–एक करके हमारे घर में ही कितने मनुष्य मर गए। यह सब देखते हुए भी अपने को अमर मानना बहुत कठिन है। पर लोग यह नहीं सोचते कि मृत्यु जो इतनी बलवती हो रही है उसका कारण हमारा विश्वास और डर है, दूसरा कुछ नहीं। किसी ने ठीक ही कहा है–

"जो डरा सो मरा"

बहुत से लोग देखने में निडर मालूम होते और ऊपर से निडरता की बात करते हैं पर वास्तव में निडर नहीं होते। एक गांव में लोग कहा करते थे कि अमुक पीपल पर एक भूत रहता है। एक दिन रात में बात आने पर एक युवक ने कहा कि भूत सूत नहीं कुछ नहीं सब गप्प है। लोगों ने कहा–क्या तुम उसी पीपल के नीचे अर्ध रात्रि में जा सकते हो। उसने कहा–अवश्य जा सकते हैं। लोगों ने कहा कि अच्छा आज रात में तुम जाओ। प्रमाण के लिए लोगों ने एक खूंटा दिया और कहा कि इस खूंटे को पीपल के नीचे गाड़ कर चले आना। इससे यह मालूम हो जायगा कि तुम गए थे या नहीं। जाड़े का दिन था, युवक एक लम्बा अंगा पहने हुए था। अर्धरात्रि को वह खूंटा और मुंगड़ी लिए हुए उस पीपल के नीचे आया। पर स्मरण रहे कि युवक पीपल के नीचे आते–2 डर गया। उसने चाहा कि खूंटा गाड़कर शीघ्र भाग चलें। आते ही वह बैठ गया और बड़ी शीघ्रता से खूंटा गाड़ने लगा। बैठने पर उसका लम्बा अंगा जमीन पर फैल गया था। जल्दी में उसने इस बात का खयाल न किया। खूंटा कपड़े को लेता हुआ जमीन में गड़ गया। खूंटा गाड़ते समय एक चिमगादड़ ने पीपल के पत्तों को हिला दिया। युवक बहुत डर गया। रोम–2 खड़े हो गये। बेंत की तरह कांपने लगा। शरीर में खून न रहा। खूंटा गड़ जाने पर चाहा कि शीघ्र यहां से भाग चलें। पर वह तो बेतरह फंस चुका था। ज्यों ही भागने के लिये उठा उसे मालूम हुआ, कि भूत ने हमें पकड़ लिया है। बस, बेहोश होकर गिर पड़ा और वहीं मर गया। सबेरे लोग आए और इस घटना को देखकर हाय हाय करने लगे। ❁

गतांक से आगे–

ऋषि दयानन्द सरस्वती

का जीवन चरित्र

रचयिताः परम ऋषिभक्त पुरुषोत्तमदास, मथुरा

अन्धे को लाठी न मिली नव यौवन आज उभर आया।
यों दयानन्द के माध्यम से जग विरजानन्द उतर आया॥
मैं दयानन्द की आँखों से 'पन्थों' की पोल निहारूँगा।
मैं दयानन्द के हाथों से रोगी का रोग निवारूँगा॥
मैं दयानन्द की वाणी में जग हित 'कल्याणी' बोलूंगा।
मतवादों को कर छार–छार मानवता की जय बोलूंगा॥
यों कर विचार अति मनोयोग से प्यारा शिष्य पढ़ाने लगे।
संशय के शूल हटाने लगे, जीवन का पथ सुलझाने लगे॥

दर्शनीय मुनिराज का गुरु सेवा का ढंग।
चढ़ा हुआ गुरु–भक्ति का इन पर गहरा रंग।।

दण्डी जी प्रतिदिन कई घड़े यमुना जल से ही नहाते थे।
गुरुदेव की सेवा में यह जल श्री दयानन्द जी लाते थे॥
ईश्वर–अर्चन की भाँति सदा यह ऐसा नियमित काम रहा।
आँधी वर्षा तूफानों में भी इसमें नहीं विराम रहा॥
प्रतिदिन बुहारते शाला को बहु विधि से गुरु अर्चा करते।
एकान्त समय गुरुदेव इन्हीं के गूढ़ शास्त्र चर्चा करते॥
बन गये गुरु के कृपा पात्र स्मरण शक्ति थी लासानी।
पढ़ने के साथ याद होता लख मेधा सबको हैरानी॥
एक प्रयोग अष्टाध्यायी का एक दिवस इन्हें था बतलाया।
गये भूल यत्न करने पर भी नहिं याद इन्हें किंचित आया॥

कहा–'पूज्य गुरु! आज का पाठ गया विसराय।
नहीं याद आता प्रभो! फिर से दो बतलाय।।

सुनते ही क्रोध अपार चढ़ा, बोले–तुम अभी चले जाओ।
स्मृति यदि काम न देवे तो, यमुना की गोद समा जाओ॥
विश्राम घाट के समीप सीताघाट वहाँ बैठे जाकर।
बहुकाल न जब कुछ याद पड़ा प्रण किया तभी यह घबड़ाकर॥
यदि सन्ध्या तक विस्मृत प्रयोग मैं याद नहीं कर पाऊंगा।
दिनकर की किरणों के संग ही यमुना की लहर समाऊंगा॥
हो गये लीन, एकाग्रचित्त तन मन का भान भुलाया है।
बाहर का विश्व भूल करके अन्तर का जगत् जगाया है॥

प्रभु चरणों में लीन हो होकर के ध्यानस्थ।
सभी वृत्तियाँ रोककर हुए पूर्ण आत्मस्थ।।

आत्मस्थ हुए जिस काल चित्त दर्पण पर चित्र उभर आये।
कोई सुना रहा है वही पाठ हो चकित ईश के गुण गाये॥
हो गया पाठ वह याद, आन गुरु चरणों में सिर नाया है।
सुन हुए प्रेम पुलकित गुरुवर प्रिय शिष्य को कण्ठ लगाया है॥
श्री स्वामी जी की आयु इधर सेंतीस वर्ष की हो आई।
मुख मण्डल तप्त स्वर्ण सम था सारे शरीर पर छबि छाई॥
था ब्रह्मचर्य का पावन व्रत निष्ठा से उसे निभाते थे।
बाजारों गलियों सभी जगह ये निमित दृष्टि से जाते थे॥

छाया यश सर्वत्र था शाला मन्दिर घाट।
चौबेगण की मण्डली क्या गृह और क्या हाट।।

घटना है एक दिवस की यों स्वामी जी ध्यान लगाते थे।
हो समाधिस्थ पद्मासन से अन्तर की ज्योति जगाते थे॥
यमुना के तट पर शोभित ये उस काल एक महिला आई।
इन परम हंस को लख श्रद्धावश चरण–धूलि को छू पाई॥
माता! माता!! कह खड़े हुए, चल दिये राह गोवर्धन की।
रहे तीन दिवस तक निराहार लौ लगी रही प्रभु–चिन्तन की॥
चौथे दिन चल यह महावीर जब गुरु सेवा में आया है।
'तुम तीन दिवस लौं कहाँ रहे?' गुरु ने यह प्रश्न उठाया है॥

स्वामी ने गुरु चरण में सत्य कहा सब हाल।
व्रत पालन–निष्ठा निरख गुरुवर हुए निहाल।।

ऋषिवर की गुरु भक्ति के कुछ अनुपम उत्कर्ष।
साधक पथ ज्योतित करें बन प्रेरक आदर्श।।

आवेश में एक दिन दण्डी जी इन पर है लकुट प्रहार किया।
लाठी से घाव हुआ तन में पर तनिक न चिन्ता भार लिया॥
पीड़ा असह्य निज भूल स्वयं गुरुदेव के हाथ दबाने लगे।
श्रम जनित पीर उनकी हरके श्रद्धायुत विनय सुनाने लगे॥
हे देव! वज्र सम देह मेरी इसका क्या भला बिगड़ता है।
आपके सुकोमल हाथों को ही कष्ट मुझे यह खलता है॥
वह चोट भुजा का चिन्ह बनी बाद में ऋषि दिखलाते थे।
गुरु उपकारों की स्मृति कर श्रद्धा के पुष्प चढ़ाते थे॥

पुनः एक दिन दण्डिवर क्रोधित हुए अपार।
कहे दुर्वचन आज भी कीन्हा दण्ड-प्रहार।।

स्वामी जी ने लाठी खाकर नहिं पाठ से चित्त हटाया है।
यह देख नयनसुख जड़िया ने दण्डी जी को समझाया है॥
प्रभु! हाथ जोड़कर करूं विनय नहिं दयानन्द को मारो तुम।
हम हैं गृहस्थ ये संन्यासी कटु शब्द न इन्हें उचारो तुम॥
निज क्रोध-जन्य यह दोष तुरत श्री दण्डी ने स्वीकार किया।
'वज्रादपि कुसुमादपि' का यह अभिनव आदर्श प्रमाण किया।
शिक्षण समाप्ति पर स्वामी जी शाला से बाहर आते हैं।
श्री जड़िया जी प्रति अपनी वे अप्रसन्नता दरसाते हैं॥
हे सखा मेरे हित शब्द कोई गुरुवर से कहना अनुचित है।
उस मार में कितना प्यार छिपा इसमें तो अपना ही हित है॥

कूट पीट मिट्टी सखे! करे रूप आधान।
कुम्भकार की भाँति गुरु करे शिष्य निर्माण।।

गुरु भक्ति का आदर्श पाठ ऋषि ने जीवन में धारा है।
दुतकारें, फटकारें, मारें इन सब में प्रेम निहारा है॥
शाला का था यह नियम जिसे सब शिष्य सहर्ष निभाते थे।
छात्र ही कुटी में आ सकते नहिं साथ किसी को लाते थे॥
श्री दण्डी जी का एक सम्बन्धी एक दिन मथुरा में आया है।
है नियम न मिलने पाओगे यह सुनकर अति दुखियारा है॥

मिल गये मार्ग में स्वामी जी तो मन की व्यथा कही सारी।
हो द्रवित दयालु दयानन्द ने दर्शन दिलवाया सुखकारी॥

लौटा वह ले साथ में दर्शन लाभ अपार।
दयानन्द के हित खुला नूतन संकट–द्वार॥

सहपाठी एक मिला आते स्वामी जी ने समझाय दिया।
वह कहाँ चूकने वाला था गुरुदेव को भेद बताय दिया॥
सुनते ही नियम–अवज्ञा यह गुरु क्रोधाविष्ट अपार हुए।
भर्त्सना दयानन्द की करके डयौढ़ी के बन्द किवार किए॥
मैं नेत्र–हीन यह जान हृदय तूने निकृष्टतम काम किया।
जाओ फिर से यहाँ आने का है खबरदार जो नाम लिया॥
हो विकल चरण गुरु के पकड़े पर हुई न कुछ भी सुनवाई।
आखिर कुछ दिन में श्री जड़िया गुरुधाम राह फिर खुलवाई॥

कमल पुष्प खिल जात ज्यों रवि का होत प्रकाश।
गुरु दर्शन कर स्वामि हिय जागा अमित हुलास॥

फिर एक दिन ऐसा योग हुआ स्वामी जी कुटी बुहार रहे।
कूड़े को एक जगह करके कोई पात्र थे तभी तलाश रहे॥
श्री दण्डी तभी उधर निकले कूड़े पर पाँव पड़ा जाकर।
आलसी, निकम्मा, कामचोर! यों क्रोध से बोले झल्लाकर॥
शिक्षा का द्वार बन्द तेरा, फिर एक बार आदेश हुआ।
श्री जड़िया, नन्दन चौबे की सेवा में स्वामी–गमन हुआ॥
घटना कह बोले गुरुवर की रुष्टता नहीं मैं सह सकता।
उनका मुझ पर जो अतुल प्यार में शब्दों में नहीं कह सकता॥
गुरु–दीक्षा का है समय निकट यह कृपा आप कीजे मुझ पर।
मेरे नव जीवन के दाता गुरुदेव न रुष्ट रहें मुझ पर॥

–(शेष अगले अंक में)

अनमोल वचन

- जो दूसरों के हित के लिए जीता है, वह महान है। जो अपने लिए जीता है वह अभागा है। दूसरों के लिए जीना महान पुण्य है।
- जो कुछ भी चाहता है, वह 'होने' में प्रसन्न और 'करने' में सावधान नहीं रह सकता।

गतांक से आगे–

किताबी शिक्षा

लेखकः डॉ० गोकुलचन्द्र नारंग

हारमोनियम–सितार आदि को बजा और गाकर बालकों को सुनाना चाहिये, वह गाने की लय और सुर समझेंगे, इससे उनकी विवेचन शक्ति ही नहीं, निर्णय शक्ति अथवा श्रवण शक्ति की उन्नति होगी। यदि बालक नहीं समझता है, तो उसको प्रत्येक बात समझा दो। पुनः धीरे–2 उसे स्वयं गाना और बजाना सिखलाओ। एक गायक ने एक बार मुझसे कहा था, कि यदि मैं गाना बजाना न जानता होता तो ग्रहचिन्ता के कारण, अब तक कभी का मर गया होता किन्तु जिस समय मैं अपना सितार उठा लेता हूं, उस समय मैं परमानन्द में लय हो जाता हूं। मतलब यह कि इससे चिन्ता नहीं व्यापती, जो एक बड़ा शत्रु है, और दूसरे अवकाश का समय किसी कुटिल प्रकृति की ओर नहीं जा पाता। बहुतेरे मनुष्य राग ही के कारण–नर्क कुण्ड के पास जाया करते हैं, यदि उनकी स्त्री गा बजा सकती तो वह अनिक्षा पूर्वक क्यों डूबते? अंग्रेज समाज की प्रसन्नताओं में एक यह भी बात है, कि उनकी स्त्रियां गाना और बजाना खूब जानती हैं। और वह स्वयं भी उसमें अभ्यास रखते हैं। यहां के लोग न मालूम किस पाप के कारण गाने बजाने के शत्रु हो रहे हैं। जानना चाहिये, कि यह बातें जीवन के लिये लाभकारी हैं, और जीवन की प्रवृत्ति का एक मुख्य अंग है।

बालकों को बचपन ही से गाना सिखाने में एक और लाभ है कि वह स्पष्ट और शुद्ध बोलने और सुनने लगते हैं। जिस प्रकार कान और जिह्वा का साधना गाने से होता है, उसी प्रकार दृष्टि का साधना चित्र खींचने से होता है। जिस समय बालक की आयु छः सात वर्ष की हो जावे उस समय से उसको पैंसिल द्वारा नित्यप्रति की व्यावहारिक वस्तुओं के चित्र बनाना, सिखलाना चाहिये। इससे केवल दृष्टि ही नहीं सधेगी, किन्तु वह स्थिर होकर प्रत्येक वस्तु को विवेचन करने के लिये भी सहायता पहुंचायेगी। ऐसे बालक मुखाकृति देख मनुष्य को पहिचानने लगते हैं। बड़े चरित्रशील और सुन्दर हो जाते हैं। गमे माद्य, गान और चित्रकला पर बालक को दबाना नहीं चाहिये, विद्या की तरह इन बातों को चस्का लगा देना चाहिये। जो मनुष्य यह विचार रखते हैं कि गान विद्या और चित्रकला विद्या, ये केवल दिखलाने के गुण हैं, वह बहुत बड़ी त्रुटि करते हैं। मैं कहता हूं कि अन्तर और वाह्य दोनों तरफ की उन्नति करने के लिये, ये दोनों गुण भूगोल और इतिहास से अत्यन्त लाभदायक हैं। कौन कब मरा, कब–कौन राजा गद्दी पर बैठा, इन बातों से विकसित होता है।

किन्तु इससे यह मतलब नहीं, कि उनको गाना और चित्रकला ही पर छोड़ दिया जाय। उनके हृदय में बीज बो दिये जाने चाहियें समय आने पर (युवावस्था में) स्वयं ही वह फूलने फलने लगेंगे। ❁

आर्य-भूमि

(1)

जहां हुये व्यास मुनि-प्रधान।
रामादि राजा अति कीर्त्तिमान।।
जो थी जगत्पूजित धन्य भूमि;
वही हमारी यह आर्य-भूमि।।

(2)

जहां हुये साधु महा महान।
थे लोग सारे धन धर्मवान।।
जो थी जगत्पूजित धर्म भूमि।
वही हमारी यह आर्य-भूमि।।

(3)

जहां सभी थे निज धर्म धारी।
स्वदेश का भी अभिमान भारी।।
जो थी जगत्पूजित-पूज्य भूमि।
वही हमारी यह आर्य-भूमि।।

(4)

हुये प्रजापालक नरेश नाना।
प्रजा को जिन्होंने सुत तुल्य जाना।।
जो थी जगत्पूजित सौख्य भूमि।
वही हमारी यह आर्य-भूमि।।

(5)

वीरांगना भारत भामिनी थीं।
वीर प्रसू भी कुल कामिनी थीं।।
जो थी जगत्पूजित वीर-भूमि।
वही हमारी यह आर्य-भूमि।।

(6)

स्वदेश सेवी जन लक्ष लक्ष।
हुये जहां हैं निज कार्य दक्ष।।
जो थी जगत्पूजित-कार्य-भूमि।
वही हमारी यह आर्य-भूमि।।

(7)

स्वदेश-कल्याण सु-पुण्य जान।
जहां हुये यत्न सदा महान।।
जो थी जगत्पूजित-पुण्य-भूमि।
वही हमारी यह आर्य-भूमि।।

(8)

न स्वार्थ का लेश जरा कहीं था।
देशार्थ का त्याग कहीं नहीं था।।
जो थी जगत्पूजित श्रेष्ठ-भूमि।
वही हमारी यह आर्य-भूमि।।

(9)

कोई कभी धीर न छोड़ता था।
न मृत्यु से भी मुँह मोड़ता था।।
जो थी जगत्पूजित धैर्य-भूमि।
वही हमारी यह आर्य-भूमि।।

(10)

स्वदेश के शत्रु स्व-शत्रु माने।
जहां सभी ने शर-चाप ताने।।
जो थी जगत्पूजित-शौर्य-भूमि।
वही हमारी यह आर्य-भूमि।।

(11)

विभिन्न थे वर्ण तथापि सारे।
थे एकता बद्ध जहां हमारे।।
जो थी जगत्पूजित–ऐक्य–भूमि।
वही हमारी यह आर्य–भूमि।।

(12)

थी मातृ–भूमि–व्रत–भक्ति भारी।
जहां हुये शूर यशोऽधकारी।।
जो थी जगत्पूजित कीर्त्ति–भूमि।
वही हमारी यह आर्य–भूमि।।

(13)

दिव्यास्त्र–विद्या–बल, दिव्य यान।
छाया जहां था अति दिव्य ज्ञान।।
जो थी जगत्पूजित–दिव्य–भूमि।
वही हमारी यह आर्य–भूमि।।

(14)

नये नये देश जहां अनेक।
जीतें गये थे नित एक एक।।
जो थी जगत्पूजित भाग्य–भूमि।
वही हमारी यह आर्य–भूमि।।

(15)

विचार ऐसे जब चित्त आते।
विषाद पैदा करते–सताते।।
न क्या कभी देव दया करेंगे।
न क्या हमारे दिन भी फिरेंगे।।

❀❀❀

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन–जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठकों से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/– एक सौ पचास रूपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/– एक हजार पाँच सौ रूपये भेजकर पत्रिका का लाभ उठायें।

हम आपको वार्षिक विशेषांक सहित पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार–प्रसार भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

–धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या–

इण्डियन ओवरसीज बैंक

शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा

I F SC Code- I OB A 0001441

*'**सत्य प्रकाशन**' खाता संख्या– 144101000002341*

भगवत् अनुरागी सज्जन की छटा

जो भगवत्–अनुरागी सज्जन होते हैं उनके मुख मण्डल पर शान्ति की आभा, उनकी वाणी में माधुर्य तथा उनका पावन शरीर भगवत–कार्य को आतुर रहता है। वे अपने लिए त्याग की मूर्ति और जगत के लिए उदार रहते हैं। उनके रोम–रोम से सर्व–हितकारी सद्भाव की रश्मियां बिखरती रहती हैं। हर समय सत्चित–आनन्द में रहते हैं।

कन्हाई दत्त

तुझे उनसे ख्वाहिशे दुश्मनी, तेरी आरजू भी अजीब है।
वो हैं तख्त पै तू है खाक पै, वो अमीर हैं तूर गरीब है।।

कन्हाई सचमुच ही क्रान्ति–युग का कन्हाई था। 1887 की कृष्णाष्टमी की काली अंधियारी रात में उसने पहले पहल इस दुनियाँ की रोशनी देखी थी। उस दैवी ज्योति के आलोक से एक बार फिर भारत के प्राण जगमगा उठे। विपक्षियों के हृदय दहल गये और इतिहास के पृष्ठ खून से तरबतर हो गये। वह ऐसा प्रकाश था, जिसकी आभा आज तक कम न हुई, प्रत्युत् दिनों दिन बढ़ती ही चली गई। आज कन्हाई का पार्थिव शरीर हमारे बीच में नहीं है, फिर भी उसका मूर्तिमान् आदर्श बरबस हमारे हृदयों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। To see him was to love him की बात अक्षरशः सत्य थी। बचपन से ही उसके ढंग औरों से निराले थे। पढ़ने–लिखने में वे प्रायः सबसे प्रथम ही रहा करते थे और स्कूल के सभी लड़के उनसे विशेष स्नेह रखते थे। दीन दुखियों से तो उन्हें कुछ विशेष सहानुभूति थी और एक धनी मानी के घर जन्म लेकर भी वे प्रायः निर्धन विद्यार्थियों के साथ ही रहा करते थे। आज किसी के लिये किताबें खरीदी जा रही हैं, तो कल एक और के लिये कपड़ों का प्रबन्ध हो रहा है और परसों किसी तीसरे के लिये भोजन की व्यवस्था की जा रही है। सारांश यह कि कन्हाई बड़ा उदारचरित तथा दयावान् था और देश सेवा के भाव उस कोमल हृदय में बचपन से ही अंकुरित हो उठे थे।

बम्बई और बंगाल में शिक्षा पाकर ग्रेजुएट होने के बाद कन्हाई यह कहकर कि नौकरी की तलाश में कलकत्ता जाता हूँ, घर से निकल पड़े। विदा होते समय उनकी माता ने स्वप्न में भी यह न सोचा था कि उनका प्यारा कन्हैया किसी और ही उद्देश्य को लेकर कलकत्ता जा रहा है।

स्वदेशी आन्दोलन समाप्त हो चुका था और क्रान्ति का धुंआ छिपे–2 बंगाल में जोरों के साथ फैल रहा था। आघात पर आघात लगने से बंगाल में एक मर्मभेदी आर्तनाद घहरा उठा। घर बार पर लात मारकर बंगाली युवकों ने प्राणों की बाजी लगानी शुरू की। अंकुर तो उग ही चुका था, अब परिस्थिति अनुकूल पाकर उसने विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लिया। माता की ममता, पिता का प्रेम धन वैभव का लोभ अथवा मृत्यु का भय अब कन्हाईलाल को अपने कर्त्तव्य से अलग न कर सका। उसने अन्त समय तक पर्वत की भांति गम्भीर रहकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया।

चन्द्रनगर में क्रान्ति का केन्द्र स्थापित कर, सन् 1907 में कन्हाईलाल कलकत्ता आ गया। कुछ दिन मानिकतल्ला बाग में श्री उपेन्द्र आदि के पास रहकर उसे चटगांव के एक कारखाने के प्रचार के लिये जाना पड़ा किन्तु एक अमीर का लड़का आखिर कुली बनकर कब तक छिपा रह सकता था। कुछ ही दिनों बाद उसे फिर वापस आना पड़ा। इस बार मानिकतल्ला न जाकर उसने एक बम फैक्टरी में अपना अड्डा

जमाया।

मई सन् 1908 के आरम्भ में नरेन्द्र गोसाईं की गद्दारी से उक्त बाग की तलाशी ली गई और गिरफ्तारियां शुरू हो गईं। कन्हाईलाल भी पकड़ कर अलीपुर जेल में लाया गया। जेल में एक ही प्रकृति वाले कितने ही नवयुवकों का काफिला जमा हो गया। काम तो कुछ था नहीं, अतएव कहीं धर्म की चर्चा होने लगी तो कहीं दो चार ने राजनीति पर बहस शुरू कर दी। नित्य ही विवाद हुआ करता था, किन्तु कन्हाई ने कभी भी उसमें भाग न लिया। सबको तंग करना तथा सोना, यही उसके दो मुख्य काम थे। जिस समय नरेन्द्र गोसाईं के बारे में बात छिड़ती तो कोई कहता कि उसे मृत्यु दण्ड हो और कोई किसी अन्य प्रकार के दण्ड का विधान तैयार करता, किन्तु उस समय भी कन्हाई चुप रहता।

एक दिन अचानक कन्हाई के पेट में बड़े जोरों का दर्द होने लगा और उसे अस्पताल भेज दिया गया। सत्येन्द्रकुमार खांसी आने के कारण पहले ही से वहीं पर थे। उन्होंने नरेन्द्र से अपने सरकारी गवाह बनने की इच्छा प्रकट की। उन पर विश्वास कर एक दिन नरेन्द्र एक अंग्रेज की संरक्षता में उनसे कुछ सलाह करने आया। अच्छा अवसर हाथ आया देख सत्येन्द्र ने उस पर फायर कर दिया। गोली पैर में लगी, किन्तु नरेन्द्र गिरा नहीं। उसे भागते देख कन्हाई आगे बढ़ा, पर उस अंग्रेज ने उसे पकड़ लिया। कन्हाईलाल ने उस पर भी गोली चलाई और वे महाशय हाथ घायल हो जाने के कारण अलग खड़े होकर चिल्लाने लगे। नरेन्द्र को अस्पताल से बाहर होते देख, कन्हाई ने उसका पीछा किया। फाटक पर पहरेदार ने रिवाल्वर देखकर स्वयं ही दरवाजा खोल दिया और उंगली के इशारे से यह भी बता दिया कि नरेन्द्र उस ओर गया है। इस बार नरेन्द्र को देखते ही उसकी पिस्तौल दनादन गोलियां उगलने लगी। उस समय किसी को भी उसकी उग्र मूर्ति का सामना करने का साहस न हुआ। जेल के और कर्मचारी तो इधर उधर छिप गये, किन्तु जेलर साहब मुसीबत में आ गये। बेचारा अपने मोटे ताजे शरीर के आधे भाग को एक लकड़ी की तिपाई के नीचे छिपाकर पड़ा रहा। नरेन्द्र के गिर जाने पर जब उसकी पिस्तौल खाली हो गई तो उसे गिरफ्तार कर लिया गया। अभियोग चलने पर इन दोनों को ही फांसी की सजा हुई। 10 नवम्बर, सन् 1908 तक, जिस दिन उन्हें फांसी दी गई थी, उनका वजन 16 पाउन्ड बढ़ गया था।

कन्हाई के फांसी के दिन का वर्णन श्री मोतीलाल राय ने बड़े ही करुणाजनक शब्दों में किया है, अतएव उसे उन्हीं के शब्दों में हम प्रस्तुत करते हैं।

''कन्हाईलाल का शव लेने के लिये हम लोग धीरे-2 एक अंग्रेज के पीछे चल दिये। उस समय शोक और दु:ख से सारा शरीर कांप रहा था। धीरे-2 लोहे के फाटक को पार कर हम लोगों ने भीतर प्रवेश किया। साहस कर उस व्यक्ति ने उंगली से एक कमरा दिखाया। उसी छोटे कमरे में सिर से पैर तक काले कम्बल से ढका कन्हाईलाल का मृत शरीर पड़ा था। हम लोगों ने उसे आंगन में लाकर रखा। किसी को भी ऊपर का कम्बल उतारने का साहस न हुआ। आशुबाबू की आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई। एक-एक कर सभी रोने लगे। उस समय उस गोरे ने कहा-'रोते क्यों हो? जिस देश में ऐसे वीर युवक जन्म लेते हैं

वह देश धन्य है। जन्म लेकर मरना ही होगा। इस प्रकार की मृत्यु मनुष्य कब पाते हैं।' हम लोग विस्मित नेत्रों से उसकी ओर देखने लगे। साहब ने शव बाहर ले जाने को कहा। हमने डरते-2 कम्बल उतारा। ओह, उस दिव्य स्वरूप का परिचय कराना हमारी शक्ति से परे है। लम्बे-2 बालों ने प्रशस्त ललाट को ढक लिया था। अधखुली आँखों से उस समय भी अमृत झलक रहा था। दृढ़-बद्ध ओष्ट-पुटों में संकल्प की जागृत रेखा फूटी पड़ती थीं, फूलों आदि से सजाये जाने पर ऐसा जान पड़ता था, मानों वह एक मधुर हंसी हंस रहा हो।

उस दिन जेल के बाहर उसके स्वागत के लिये मानव समूह उमड़ आया था। बाहर आते ही 'वन्देमातरम्' की आवाज के साथ ही फूलों की वर्षा होने लगी। कन्हाई की श्मशान यात्रा के समय इतना जन समूह उमड़ आयगा, इसकी आशा न थी।

एक छोटी वक्तृता के बाद चिता में आग दे दी गई और कुछ घण्टों के बाद वहाँ राख के [illegible] ढेर के सिवा और कुछ न रहा। उस समय चिता की एक मुट्ठी भस्म पाने के लिये लोगों में एक प्रकार की छीना झपटी सी मच गई। मैं भी अस्थि का एक टुकड़ा चाँदी की डिब्बी में रखकर घर वापस आया।

आधी रात का समय था। ऐसा जान पड़ा कि घर एक प्रकार की दुर्गन्धि से भर गया है। मैं भयभीत होकर उठ बैठा। उस समय कन्हाई की विधवा माता का करुण-क्रन्दन हृदय को विदीर्ण करने लगा। मैं घुटने टेक कर बैठ गया और उस वीर प्रसविनी विधवा की चरण रज मस्तक में लगा ली और करुण स्वर से कहा-"वन्देमातरम्"। ❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती

दादाभाई नौरोजी	4 सितम्बर
डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन	5 सितम्बर
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	9 सितम्बर
पं0 गोविन्दबल्लभ पंत	10 सितम्बर
विनोबा भावे	11 सितम्बर
मैडम भीकाजी कामा	24 सितम्बर
पं0 दीनदयाल उपाध्याय	25 सितम्बर
शहीद भगतसिंह	28 सितम्बर

महापुरुषों की पुण्यतिथि

यतिन्द्रनाथदास	13 सितम्बर
गुरूवर विरजानन्द दण्डी	14 सितम्बर
गुरूनानक देव	27 सितम्बर
राजाराममोहन राय	27 सितम्बर

शिक्षक दिवस	5 सितम्बर
हिन्दी दिवस	14 सितम्बर
विजयदशमी	30 सितम्बर

मानसकार का दुराग्रह

रामचरित–मानस में तुलसीदास 'अवध–नृपति–सुत' राम को परब्रह्म परमेश्वर कहते नहीं थकते। अगणित बार, अनेक ढंग से, विविध अवसर निकाल कर, नए प्रसंगों की अवतारणा कर गोस्वामी जी पग–पग पर राम का ईश्वरत्व प्रदर्शित करते रहते हैं। कवित्व का सहारा लेकर लक्ष्मण द्वारा और कभी वाच्यार्थ से भी वे पुनरुक्ति का छोड़ केवल एक बात अनेक बार दुहराते रहते हैं कि राम साधारण मानव नहीं, स्वयं परब्रह्म परमेश्वर ही हैं जो भक्तों को सुख देने के लिए अवतरित हुए हैं। राम–जन्म से लेकर राम–राज्य तक यही क्रम चलता रहता। रामचन्द्रजी के जन्म लेते ही कवि के मन की यह दुर्बलता बोल पड़ी। मानसकार को उन्हें परब्रह्म परमेश्वर बतलाने की आवश्यकता जान पड़ी और कवि ने लक्षणा द्वारा संकेत कर ही दिया कि–

मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ निसा कबन विधि होइ।।
यह रहस्य काह नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुन गाना।।

इसी प्रकार बाल–चरित के बीच–बीच में मानसकार राम के परब्रह्मत्व की ओर संकेत करते रहते हैं–

मन क्रम वचन अगोचर जोई। दशरथ अजिर बिचर प्रभु सोई।।
निगम नेति शिव अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा।।

राम जब गुरुगृह पढ़ने जाते हैं तब कवि कह उठता है कि–

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी।।

जब राम मृगया करते हैं तब भी कवि उसी प्रकार का संकेत करता है कि–

जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि परलोक सिधारे।।

इस प्रकार तुलसीदास पाठकों को सर्वदा स्मरण दिलाते रहते हैं कि 'अवध–नृपति–सुत' राम स्वयं–परब्रह्म परमेश्वर हैं। धन की निरन्तर चोट से जिस प्रकार कील पक्की दीवाल में भी दृढ़ता से घुसती जाती है, उसी प्रकार मानसकार इस निरन्तर स्मरण दिलाते रहने से सामान्य पाठकों और भोले श्रोताओं के हृदय में यह मिथ्या विश्वास जमाने का यत्न करता है कि कौशलेश के राजकुमार राम और कोई नहीं स्वयं भक्तिवत्सल भगवान ही हैं।

सीता हरण के पश्चात् सीता को खोजते हुए जब भगवान राम अत्यन्त कामी और महाविरही की भांति विलाप करते फिरते हैं, तब सती की भांति कहीं पाठकों के हृदय में कोई शंका न उत्पन्न हो जाय,

इसीलिए कवि आगे कह उठता है कि–

पूरन काम राम सुख रासी। मनुज चरित कर अज अविनाशी।।

और लक्ष्मण शक्ति लगने पर जब राम 'मनुज अनुसारी' वचन बोलते हुए विलाप करते हं, तब उममा के हृदय में संशय का मार्ग अवरूद्ध करने के लिए शीघ्र ही शिवजी बोल उठते हैं कि–

बहु विधि सोचत सोच विमोचन। स्रवत सलिल राजीव दल लोचन।।
उमा अखण्ड एक रघुराई। नर गति भगति कृपालु दिखाई।।

तुलसीदास ने स्वयं तो राम के ईश्वरत्व की पुनरुक्ति अगणित बार की, परन्तु यह सोचकर कि सभी बातों के लिए साक्षी की आवश्यकता पड़ती है, उन्होंने मानस के प्रायः सभी पात्रों से राम का परब्रह्मत्व घोषित कराया है। पुत्र–जन्म का समाचार पाते ही महाराज दशरथ विचार करते हैं कि–

जाकर नाम सुनत शुभ होई। मोरें गृह आवा प्रभु सोई।।

अर्थात् बालक राम परब्रह्म परमेश्वर हैं जो पुत्र रूप में उन्हें कृतार्थ करने आए हैं। राम–विवाह के पश्चात् महाराज जनक ने भी भगवान राम का परमेश्वर रूप पहचान कर उनसे प्रार्थना की थी कि–

राम कहौं केहि भाँति प्रसंगा। मुनि महेस मन मानस हंसा।।
करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोह मोह ममता मद् त्यागी।।
नवन विषय मो कहुं भयउ, सो समस्त सुख मूल।
सबहिं लाभ जग जीव कहं, भए ईसु अनुकूल।।

गुरु वशिष्ठ से भी चित्रकूट में विप्र, महाजन, सचिव आदि सबके सामने ही कहलाया गया है कि–

विधि हरि हरु ससि रवि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला।।
अपरि महिष जहं लगि प्रभुताई। जोगि सिद्धि निगमागम गाई।।
करि विचार जियं देखहु नीके। राम रजाइ सीस सबही के।।

पापी निश्चरों के विनाश की चिन्ता करते हुए महामुनि विश्वामित्र द्वारा भी राम के परब्रह्मत्व की पहिचान कराई गई है। वे अपने मन में विचार करते हैं कि– प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥

एहूं मिसि देखौं पग जाई। करि विनती आनौं दोड भाई।।
ग्यान विराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखब भर नयना।।

और आर्य श्रेष्ठ वाल्मीकि मुनि द्वारा भी कहलाया गया है–

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीश माया जानकी।
जो सृजति जगु पालित हरति रुख पाइ कृपा निधान की।।

फिर अत्रि, अगस्त्य, शरभंग, सुतीक्ष्ण आदि ऋषियों द्वारा भी राम को परब्रह्म परमेश्वर के रूप में पूजा कराई है। राम के निर्गुण–सगुण रूप के प्रति सुतीक्ष्ण कहते हैं–

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं।।
अमलमखिलमनवद्यपारं । नौमि राम भंजन महि भारं।।

और तो और वेदों! के द्वारा भी राम को परब्रह्म परमेश्वर मानकर उनकी वन्दना करा डाली है–

देवताओं के अतिरिक्त राक्षसों द्वारा भी गोस्वामी जी ने राम के ईश्वरत्व की स्पष्ट घोषणा कराई है। राक्षसराज रावण का मत सुनिए वह विचार करता है कि–

खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहिं को मारइ बिन भगवंता।।
सुर रंजन भंजन महिं भारा। जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा।।
तौं मैं जाइ बैरु हठि करऊं। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊं।।

रावण का मामा मारीच भी उसे समझाता है–

तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नर रूप चराचर ईसा।।
तासों तात बयरु नहिं कीजै। मारें मरिय जिआँए जीजै।।

रावण अनुज विभीषण भी उसे समझाने का प्रयत्न करता है–

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहु कर काला।।
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। व्यापक अजित अनादि अनंता।।

यह तो राक्षसों की साक्षी हुई। गृद्धराज जटायु, शबरी, निषाद, बालि, हनुमान, अंगद, जामवंत, सम्पाति तथा काकभुशुंडि आदि सभी गोस्वामी जी के हाथों में पड़कर राम को परब्रह्म परमेश्वर घोषित करते हैं। साक्षी से ही यदि कोई बात प्रमाणित की जा सकती है तो मानस के भगवान राम के परब्रह्म परमेश्वर होने की बात को माणित करने के लिए मानसकार ने सभी प्रकार के द्विज और अद्विज, नर और नारी, ऋषि और मुनि, सुर और असुर, पशु और पक्षी, जड़ और चेतन, शत्रु और मित्र, आर्य और अनार्य की साक्षी उपस्थित कर दी है। इतने पर भी यदि किसी को संदेह रह जावे कि राम केवल 'अवध–नृपति–सुत' हैं, परब्रह्म परमेश्वर नहीं तो बेचारे गोस्वामीजी क्या करें?

स्वयं अगणित बार राम के ईश्वरत्व की पुनरुक्ति कर, शंका करने वालों की शंका का समाधान करा, अगणित ऋषि–मुनियों की साक्षी दिलाकर भी सम्भवतः मानसकार को पूर्ण संतोष नहीं हुआ। पाठकों के हृदय में संशय का लेश भी न रह जाय इसके लिए तुलसीदास ने स्वयं भगवान राम के श्रीमुख की वाणी से भी उनका परब्रह्मत्व घोषित कराया है। रामचन्द्र जी अपने ईश्वरत्व की घोषणा करने के लिए ही जन्म के समय सायुध–चतुर्भुज रूप में प्रकट हुए थे।

फिर माता कौशल्या को भी उन्होंने अपना अद्‌भुत अखंड रूप दिखलाया–

रोम रोम प्रति लागे कोटि–कोटि ब्रह्माण्ड।

और शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश करते हुए का था कि–

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।

इस प्रकार मानसकार विविध प्रकार से एक ही बात की अनेक बार पुनरुक्ति कर हठपूर्वक राम के 'व्यापक विरज अज' ब्रह्म होने की छाप प्रत्येक पाठक के हृदय पर बैठा देना चाहते हैं।

हितोपदेश की 'सात ठग और ब्राह्मण की बछिया' वाली कहानी में ठग लोग कंधे पर बछिया ले जाते हुए ब्राह्मण को तर्क द्वारा यह प्रमाणित नहीं कर सकते थे कि उसके कंधे पर गाय की बछिया नहीं वरन् एक कुतिया है। अस्तु, उन्होंने दुराग्रहपूर्वक उसके हृदय में यह मिथ्या विश्वास उत्पन्न करा दिया कि वह सचमुच एक कुतिया को कंधे पर लादे जा रहा है। ब्राह्मण कंधे पर बछिया लादे अपने रास्ते पर चला जा रहा था कि एक ठग आकर विस्मय की मुद्रा में बोल उठा 'अरे भाई यह क्या? तुमने अपने कंधे पर कुतिया क्यों बैठा रक्खी है?' ब्राह्मण को सम्भवतः अपनी बुद्धि पर विश्वास था, इसीलिए उसने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। आगे चलने पर दूसरे ठग ने आकर जब ठीक उसी मुद्रा में ठीक वही बात कही तब उसके हृदय में संदेह की एक रेखा अवश्य खिंच गई, परन्तु फिर भी उसने उसकी बात का विश्वास नहीं किया, परन्तु जब तीसरे ठग ने भी ठीक उसी प्रकार की बात कही तब उसे एक बार बछिया को अपने कंधे पर से उतार कर भली भांति देख लेना पड़ा कि कहीं उसने सचमुच ही भूल से बछिया के बदले किसी कुतिया को तो अपने कंधे पर नहीं बैठा लिया। फिर भली भांति देख–भाल कर उसने बछिया को कंधे पर डाला और अपने रास्ते पर चल पड़ा। इतने में चौथे ठग ने हंसकर व्यंग की मुद्रा में कहा कि 'अरे तुम कैसे बुद्दू ब्राह्मण हो जो कन्धे पर कुतिया लादे लिए जा रहे हो।' ब्राह्मण ने उसकी बात तो अनसुनी कर दी, परन्तु जब पांचवें और छठे ठग ने भी वही बात दुहराई, तब तो उसे अपनी बुद्धि और आंखों पर अविश्वास–सा होने लगा और अन्त में जब सातवें ठग ने कहा कि 'छी! छी! तुम ब्राह्मण होकर एक कुतिया कंधे पर बैठाए लिए जा रहे हो' तब तो उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि जिसे उसने कंधे पर बैठा रखा है, वह कुतिया छोड़ बछिया हो ही नहीं सकती और उसने बछिया को कंधे पर से उतार कर जंगल में छोड़ दिया जिसे सातों ठगों ने मिलकर पकड़ लिया। अस्तु, जहाँ सत्य न होने से तर्क के लिये अवकाश नहीं वहाँ एक ही बात को कई तरह से कितनी बार दुहरा कर मिथ्या विश्वास उत्पन्न कराना पड़ता है। तुलसीदास ने रामचरित मानस में इसी दूसरे मार्ग का सहारा लिया है। उन्होंने अपने कवि को, रामायण के विभिन्न पात्रों को और स्वयं श्रीराम को ठगों के रूप में प्रस्तुत करके श्रीराम के ईश्वरत्व में मिथ्या विश्वास कराने का यत्न किया है। और इस प्रकार सच्ची प्रभु भक्ति रूप बछिया को अपनी वाक् चातुरी से छीनकर ब्राह्मण रूप भारतीय प्रजा को श्री–हीन बना दिया है। स्पष्ट है कि अवतारवाद का यह पाप एकमेव गोस्वामीजी के दुराग्रह और मनस्तोष की देन है, जिसका मूल है तत्कालीन पौराणिकता का बोलबाला। ❀❀❀

ब्रह्मचारी की प्रतिज्ञा

लेखकः लक्ष्मणनारायण गर्दे

व्रतबन्ध हो जाने पर बालक की संज्ञा ब्रह्मचारी हो जाती है। उसे गुरुकुल में जाने की आज्ञा मिलती है। उस समय वह बहुत सी बातों की, सबके सामने प्रतिज्ञा करता है। वह प्रतिज्ञा वास्तव में देखने ही योग्य है।

कविता

मैं ब्रह्मकुल का बालक बनता हूँ ब्रह्मचारी।
पढ़ने को वेद–विद्या करता हूँ मैं तैयारी।।
आचार्य ने कृपा कर उपनीत कर दिया है।
मन्त्रों से होम करके पावन मुझे किया है।।

गुरुमंत्र का सदा ही करता रहूँगा जप मैं।
सद्बुद्धि के उदयहित करता रहूँगा तप मैं।।
अग्ने! मुझे कृपा कर देना वही सुमेधा।
ध्याते जिसे पितर हैं सब देव औ सुवेधा।।

रक्षा सदैव करना गायत्रि वेद मातः!
करता हूँ ध्यान तेरा सायं तथैव प्रातः।।
मैं सूर्य के उदय से पहले सदा जगूँगा।
बाहर नगर से जाकर शौच–क्रिया करूँगा।।

मल–मूत्र–इन्द्रियों को धोऊँगा मृत् लगा कर।
मैं स्नान–मन्त्र सारे पढ़ लूँगाचित् लगाकर।।
मैं स्नान कर कुशासन फौरन् बिछा जचूँगा।
ध्या करके ब्रह्मज्योतिः पापों से मैं बचूँगा।।

गुरु–मंत्र से शिखा को बाँधूँगा नित्य ही मैं।
फिर आचमन करूँगा सब धर्म कृत्य ही मैं।।
करे सुप्राण संयम अघमर्षणादि जप के।
ध्याऊँगा सूर्य को मैं होंगे जो धाम तप के।।

जप से निवृत्त होकर गुरु वन्दना करूँगा।
संमुख सदैव गुरु के भिक्षा मैं ला धरूँगा।।
आज्ञा गुरू की पाके श्रुति–शास्त्र मैं पढ़ूँगा।
करने को देश–सेवा आगे सदा बढ़ूँगा।।

सोऊँगा भूमि पर ही पीऊँगा शुद्ध पानी।
सात्विक करूँगा भोजन जिससे बनूँगा ज्ञानी।।
मधु–मांस का विवर्जन है मुख्य धर्म मेरा।
शास्त्रोक्त होम विधि ही है मुख्य कर्म मेरा।।

मिथ्या कभी न बोलूँ प्रण को कभी न तोड़ूं।
धर्मार्थ कष्ट भी जो आवे तो मुँह न मोड़ूं।।
सहकर के शीत–वर्षा तन को सुदृढ़ बनाऊं।
परमार्थ में ही अपना सर्वस्व मैं लगाऊं।।

स्त्री–संग से सदा ही बचता रहूँगा स्वामिन्।
सद्ग्रंथ मैं सदा ही रचता रहूँगा स्वामिन्।।
कर करके वीर्य–रक्षा तन–मन करूँगा पक्का।
धरती पै डाल दूँगा दुष्टों को देके धक्का।।

विद्या–कला का संचय मैं आज कर रहा हूँ।
हृत्कोष में सुमति का पीयूष भर रहा हूँ।।
देकर के वेद–विद्या गुरु जब विदा करेंगे।
गुरु–दक्षिणा भी कुछ हम चरणों में लाधरेंगे।।

कैसा परम मनोहर होगा अहो! समय वह।
आचार्य देंगे मुझको करके कृपा अभय वह।।
प्रेमाश्रु की सुधारा नयनों से वह चलेगी।
गुरु से वियुक्त होते हस्तों को मति मलेगी।।

❀❀❀

"वेद प्रदानादाचार्यं, पितरं परिचक्षते।" – (धर्मज्ञ मनु)
अर्थात् वेद–विद्याओं के पढ़ाने के कारण आचार्य पिता करके माना गया है।

स्वास्थ्य चर्चा

अंगुलियों का फूलना–

सर्दियों में ठण्डा पानी लगने से हाथ–पैरों की अंगुलियाँ सूज जाएँ और उनमें खुजली हो तो–

1. गेहूँ की भुसी 20 ग्राम, नमक 5 ग्राम दोनों को पानी में उबालकर हाथ या पाँवों को इस उबले हुए सुहाते–सुहाते पानी में रखें।

2. शलगम 50 ग्राम लेकर एक किलो पानी में उबालें। इस पानी में भी हाथ या पैर रखने से अंगुलियों की सूजन दूर होती है।

अण्डकोश–वृद्धि–

1. छोटी कटेरी (कटेली) की जड़ की छाल ताजा हो तो 15 ग्राम और सूखी हो तो 10 ग्राम, कालीमिर्च 7 नग। दोनों को घोट–पीसकर 125 ग्राम पानी में मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पिलाएँ। यह एक खुराक है। एक सप्ताह पिलाने से रोग समूल नष्ट हो जाता है।

2. तम्बाकू का पत्ता गर्म करके अण्डकोशों पर बाँध दें और लंगोट चढ़ा लें। घण्टे–भर में लंगोट भीग जाएगा, तब दूसरा लंगोट बदल लें। फिर तीसरा भी बदल लें, खुजली होगी परन्तु खुजाएँ नहीं। प्रातः पत्ते को खोल दें। अण्डकोश पर सूराख (छिद्र) हो गये होंगे, वहाँ मक्खन लगा लें। कुछ दिन प्रयोग करने से अण्डकोश ठीक स्थिति में आ जाएँगें।

नोट– यदि गीला पत्ता न मिले तो सूखे पत्ते को दिन–भर भिगोकर रात्रि में प्रयोग करें।

3. माजूफल 20 ग्राम, फिटकरी 5 ग्राम दोनों को पानी में पीसकर अण्डकोशों पर सारी या थोड़ी–थोड़ी लेप करें। दो सप्ताह तक प्रयोग करें।

4. इन्द्रायण की जड़ कपड़छन करके अरण्डी के तेल में मिलाकर बढ़े हुए अण्डकोशों पर लेप करें। इन्द्रायण की जड़ का चूर्ण 2 ग्राम प्रतिदिन प्रातः दूध के साथ सेवन करें। एक सप्ताह में अण्डवृद्धि को आराम आ जाता है परन्तु कुछ दिन तक सेवन करें।

5. आम के पत्ते 20 ग्राम, सेंधा नमक 10 ग्राम दोनों को बारीक पीसकर और थोड़ा गर्म लेप करने से अण्डवृद्धि को आराम आ जाता है और फिर कभी यह रोग नहीं होता। –(**शेष अगले अंक में**)

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2016 का शुल्क अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष 2017 के वार्षिक शुल्क के साथ शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को जमा करायें ताकि पत्रिका व विशेषांक सुचारू रूप से आपको प्राप्त होते रहें। गत वर्ष का विशेषांक **"भारत और मूर्तिपूजा"** पाठकों को भेज दिया है। इस वर्ष का विशेषांक भी शीघ्र ही भेजा जायेगा। **आप यथाशीघ्र बकाया शुल्क भिजवायें।**

–व्यवस्थापक तपोभूमि मासिक

समाज व व्यक्ति में नहीं होता है। तब व्यक्ति व समाज कितना अन्धा हो जाता है वह इन दुष्टों के अनुयायियों की मनोदशा को जानकर ज्ञाता होता है जब देश के प्रबुद्ध न्यायाधीशों ने इनके पापों को सिद्ध कर दिया और यह मान लिया कि यह तथाकथित सन्त व्यभिचारी हैं और इन्होंने बेटियों के साथ व्यभिचार किया इतने पर भी इनके अनुयायी इनके पापों पर विश्वास न कर देश के कानून को भी न मानकर इनके पीछे मरने-मारने को लाखों की संख्या में तैयार रहते हैं। सरकारें भी नितान्त अन्धी होकर इनका पृष्ट पोषण वोट के लोभ में करती रहती हैं जैसा कि अभी हरियाणा में हुआ यह स्थिति राष्ट्र और समाज के लिए विनाशकारी ही होगी। इन दुष्प्रवृत्तियों को रोकने के लिए आर्यसमाज जैसे प्रबुद्ध संगठनों को आगे आना पड़ेगा क्योंकि जब वेदज्ञान का प्रचार-प्रसार कम हो जाता है तभी अज्ञानप्रिय ऐसे निशाचर अपना खुला साम्राज्य स्थापित करने में सफल हो जाते हैं और सामाजिक जीवन को विषाक्त कर डालते हैं। इनका दुष्प्रभाव आज सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है चारों ओर बलात्कार, लूटमार, छीना-छपटी और छल-कपट का ही बोलवाला है। महर्षि दयानन्द ने ठीक ही लिखा था कि-

गुरू लोभी चेला लालची दोनों खेलें दाव।
भवसागर में डूबते बैठ पत्थर की नाव।।

निश्चित रूप से तथाकथित गुरु और चेलों का यही हाल है। आशाराम बापू, राम रहीम तो मात्र एक उदाहरण के रूप में सामने आ गये हैं अन्यथा धर्म के नाम पर लूटकर पेट भरने वाले और संसार में वैभवशाली जीवन बिताने वाले वासनारूपी कीड़े जो सारे मानव समाज के उच्च आदर्शों को दीमक की तरह चट किये जा रहे हैं, ऐसे पादरी, मुल्ला, मौलवी, सन्त, कथावाचकों की बाढ़ आ रही है किसी की पोलें खुल गयी हैं तो किसी की खुलने वाली है। पर इन धर्म के ठेकेदारों में 90 प्रतिशत ऐसे ही नरपिशाच हैं जो धर्म का आवरण डालकर सम्मान पा रहे हैं। महर्षि दयानन्द ने अपने अमरग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में आज से सौ वर्ष पहले ही इनकी पोल खोल दी थी। किसी ने जब उनसे पूछा कि वृन्दावन तीर्थ कैसा है तब उन्होंने कहा था कि वृन्दावन जब होगा तब होगा अब तो वेश्यावन है। जहां तहां आश्रमों में साधु साध्वियों के लल्ला-लल्ली खेल रहे हैं। इसी विकट परिस्थिति में उन्होंने उपदेश मंजरी में पूना के प्रवचन में कहा था कि वेदज्ञान के बिना भारतवर्ष की दुर्दशा को देखकर हमारी छाती फटी जाती है। महर्षि दयानन्द का मानना था कि पुरुषों को ब्रह्मचर्य जीवन और नारियों का सतीत्व जिस देश, समाज, परिवार में सुरक्षित है वह देश, समाज, परिवार और व्यक्ति उन्नति के चरम लक्ष्य को प्राप्त होता है और इनके बिना चारों ओर अज्ञान अन्धकार फैल जाता है जिससे लूटमार, अत्याचार, व्यभिचार और बीमारियों का साम्राज्य स्थापित होकर नरकतुल्य दृश्य उपस्थित हो जाता है। पिता पुत्र, भाई बहन आदि के सम्बन्ध कलंकित होने लगते हैं। कोई किसी से भी सुरक्षित नहीं रहता। मनुष्य पशुतुल्य हो जाता है। संवेदनशून्य होकर अपने स्वार्थों की पूर्ति में लग जाता है। कविवर रामधारीसिंह दिनकर ने इसी तथ्य को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है कि-

जब स्वार्थ मनुज की आंखों पर माड़ी बनकर छा जाता है।
तब वो मानव से बड़े-बड़े दुश्चिन्त कृत्य करवाता है।।

आज ऐसी विषम अवस्था में सामाजिक जीवन को शुद्ध पवित्र करने के लिए सर्वहित को ध्यान में रखकर महर्षि दयानन्द के अनुयायियों को आगे आकर अपने दायित्व का निर्वहन करना चाहिए अन्यथा इस अव्यवस्था के चपेट में कोई भी नहीं बच पाएगा।

डूबेगी नैया तो डूबेंगे सारे।
न तुम्हीं बचोगे न साथी तुम्हारे।।

❋❋❋

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (सजिल्द)	220.00	मील का पत्थर	20.00
शुद्ध रामायण (अजिल्द)	170.00	भ्रांति दर्शन	20.00
शंकर सर्वस्व	120.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00
नारी सर्वस्व (प्रेस में)		बाल मनुस्मृति	12.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	ओंकार उपासना	12.00
शुद्ध हनुमच्चरित	60.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
विदुर नीति	40.00	दादी पोती की बातें	10.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	क्या भूत होते हैं	10.00
चाणक्य नीति	40.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
नित्य कर्म विधि	32.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
वेद प्रभा	30.00	सच्चे गुच्छे	8.00
शान्ति कथा	30.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
भारत और मूर्ति पूजा	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
यज्ञमय जीवन	30.00	गायत्री गौरव	5.00
दो बहिनों की बातें	30.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
दो मित्रों की बातें	30.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
चार मित्रों की बातें	20.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	जीजा साले की बातें	5.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2017 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबाइल- 9759804182

Yogendra # 9927136600

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित